वर्ष : 4, अंक : 14

अप्रैल-जून 2020

हिन्दुस्तानी भाषा भारती

(भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार और संवर्धन को समर्पित त्रैमासिक पत्रिका)

"हिंदी है हम"

विशेष :

'संथाली भाषा, लोक-कला और उसका साहित्य'

हिन्दुस्तानी भाषा भारती (त्रैमासिक पत्रिका) के प्रकाशित अंक

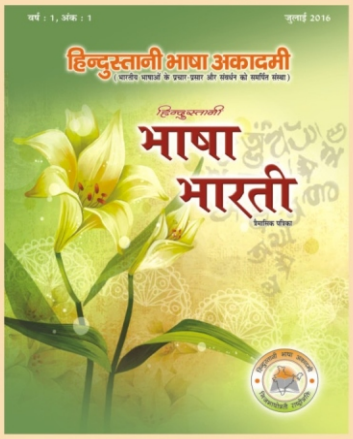

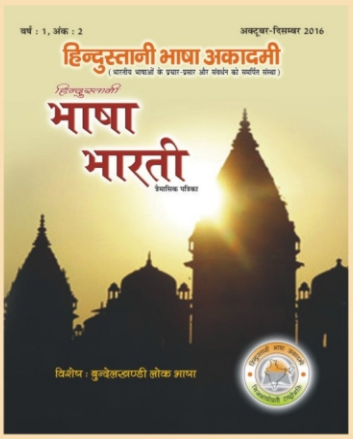

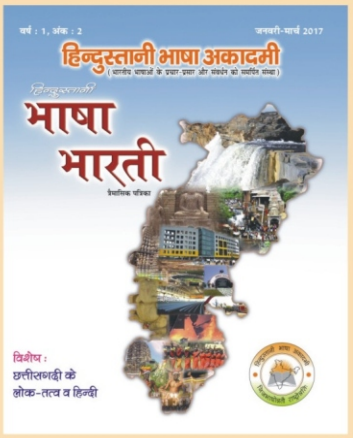

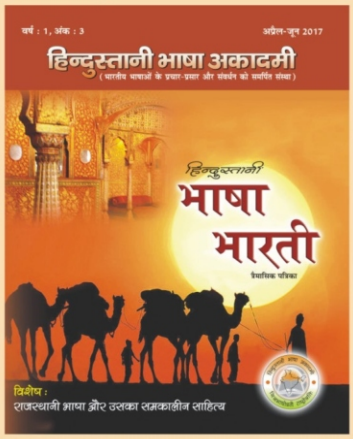

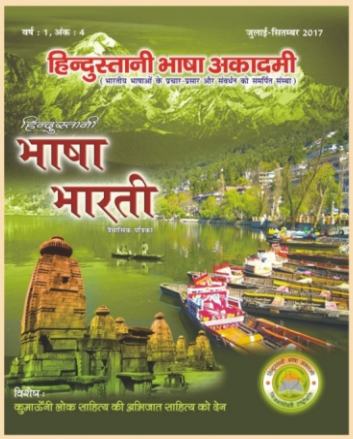

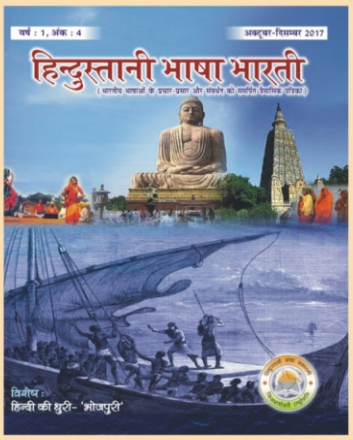

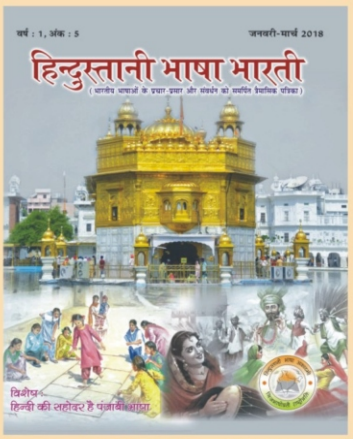

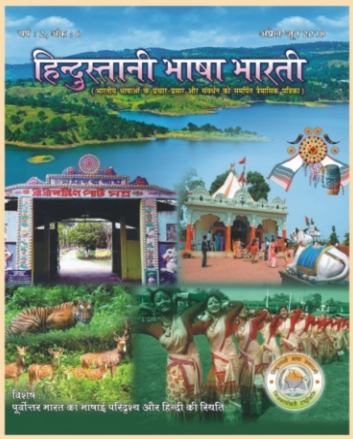

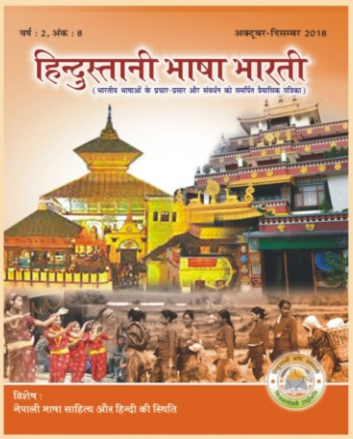

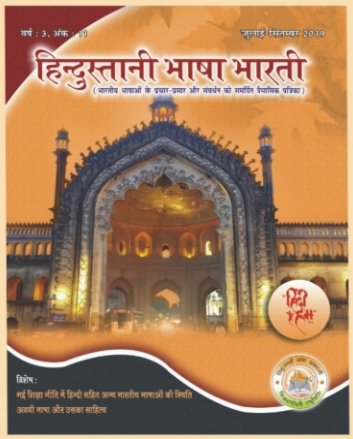

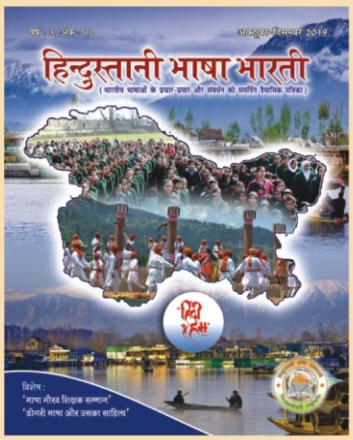

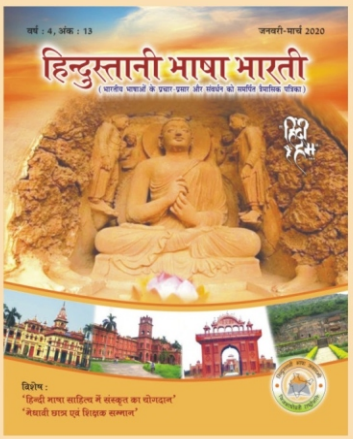

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी

निजभाषोन्नतौ राष्ट्रोन्नतिः

वर्ष : 4, अंक : 14

हिन्दुस्तानी भाषा भारती

मूल्य : 30 रुपये

(भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार और संवर्धन को समर्पित त्रैमासिक पत्रिका)

सम्पादक
सुधाकर बाबू पाठक

प्रबन्ध सम्पादक : **विजय कुमार शर्मा**
परामर्श सम्पादक : **सुरेखा शर्मा**
संयुक्त सम्पादक : **राजकुमार श्रेष्ठ**
सह सम्पादक : **सागर समीप**
उप सम्पादक : **सरोज शर्मा**
: **सुषमा भण्डारी**
: **सोनिया अरोड़ा**
: **पुलकित खन्ना**
सम्पादकीय सलाहकार : **डॉ. वनीता शर्मा**
विधि सलाहकार : **अमरनाथ गिरि**
वित्तीय सलाहकार : **राम सिंह मेहता**

कार्यालय :
हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी
3675, राजा पार्क, रानी बाग, दिल्ली-110034
ई-मेल : info@hindustanibhashaakadami.com
hindustanibhashabharati@gmail.com
वेबसाइट : www.hindustanibhashaakadami.com
सम्पर्क सूत्र : 09873556781, 09968097816

- पत्रिका में प्रकाशित लेखों में लेखकों के अपने विचार हैं । प्रकाशक का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है ।
- सभी विवादों का निपटारा दिल्ली/नई दिल्ली की सीमा में आने वाली सक्षम अदालतों और फोरमों में ही किया जाएगा ।
- सम्पादन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक और अव्यावसायिक है ।

प्रकाशक, सम्पादक व मुद्रक सुधाकर बाबू पाठक द्वारा स्वामी हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी ट्रस्ट, 3675, राजा पार्क, शकूर बस्ती, दिल्ली-110034 के लिए प्रकाशित और सन्नी प्रिन्टर्स, बी-234, नारायणा इन्डस्ट्रियल एरिया, फेस-1, नई दिल्ली-110028 से मुद्रित ।

विषय सूची

संपादकीय : कोरोना महामारी में हिन्दी की उपेक्षा 04
साक्षात्कार : प्रो. कुमुद शर्मा, शिक्षाविद्, आलोचक एवं विश्लेषक 05
साक्षात्कार : राकेश मिश्र, कवि एवं प्रशासनिक सेवा अधिकारी 09
विश्व भाषा हिन्दी की अद्यतन स्थिति - डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय 12
संथाली भाषा और उसका साहित्य - राम कृष्ण बाजपेई 16
संथाल सांस्कृतिक विविधता - डॉ. रेखा 18
बदलते परिवेश में हिन्दी का नया स्वरूप - संतोष बंसल 21
संथाली भाषा : आठवीं अनुसूची में आने के बाद भी.... -सुनील बादल 25
हिन्दी की राष्ट्रीय स्वीकार्यता : समस्या एवं संभावनाएँ-डॉ. वनीता शर्मा 27
मातृभाषाओं से कटता बाल संसार - रचना चतुर्वेदी 29
हिंगलिश और रोमन लिपि में धंसती युवा पीढ़ी - गरिमा संजय 32
त्रिभाषा सूत्र : भावनात्मक एकीकरण और हिन्दी शिक्षण - सुरेखा शर्मा 33
त्रिभाषा सूत्र और राज्यों में उस सूत्र की.... - शकुन्तला मित्तल 35
भाषाई अस्मिता और हिन्दी - डॉ. उर्मिला पोरवाल 36
हिन्दी राष्ट्रभाषा से पहले जन-जन की भाषा बने - डॉ. प्रदीप उपाध्याय 38
भारत में मातृभाषा शिक्षा की प्रासंगिकता - सुजाता भट्टाचार्य 40
महात्मा गाँधी का राष्ट्रभाषा-दर्शन - प्रो. हरीश कुमार शर्मा 42
भाषा के संकट का दौर - संजय ठाकुर 46

अकादमी के आगामी प्रकाशन :

भाषा-गत-अनागत (साक्षात्कार संग्रह) 48
हिन्दी : विमर्श के विविध आयाम (हिन्दी पर केन्द्रित लेख संग्रह) 49
भारतीय भाषाएँ : चिंता से चिंतन तक (भाषाओं पर केन्द्रित लेख संग्रह) 50

सम्पादकीय

कोरोना महामारी में हिन्दी की उपेक्षा

सुधाकर पाठक
सम्पादक एवं अध्यक्ष,
हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी

इस समय विश्व कोरोना महामारी के संकट से जूझ रहा है। इस अनिश्चितकालीन त्रासदी ने विश्व के सभी विकसित, विकासशील तथा विकासोन्मुख देशों को बुरी तरह से प्रभावित किया है। इस महामारी ने जहाँ विश्व अर्थव्यवस्था, पर्यटन, उड्डयन, व्यापार, शिक्षा, स्वास्थ्य, खाद्य जैसे आवश्यक क्षेत्रों को अपनी चपेट में लिया है, वहीं विश्व के सभी वैज्ञानिक तथा चिकित्सकीय अनुसंधान क्षेत्र, विश्व स्वास्थ्य संगठन आदि इस संक्रमण के टीके की खोज पर दिन-रात काम कर रहे हैं। भारत जैसे विकासशील देश में जहाँ पहले से ही अशिक्षा, भुखमरी, गरीबी, बेरोजगारी, अव्यवस्था, असमानता कायम है, इस महामारी ने इन समस्याओं को और भी जटिल बना दिया है । आज कोरोना महामारी ने देश में अंधाधुंध शहरीकरण, आधुनिकता की होड़, इंटरनेट और मोबाईल जेनेरेशन, बहु-राष्ट्रीय कम्पनियों का मायाजाल, भूमंडलीकरण, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, वैश्विक बाजारवाद, राष्ट्रवाद आदि के माध्यम से ढंकी हुई इन समस्याओं को वृहत रूप में आम नागरिकों के बीच उजागर कर दिया है। इसने देश के अर्थतन्त्र, शासन-प्रशासन व्यवस्था, स्वास्थ्य सेवाओं, सुरक्षा, यातायात व्यवस्था आदि को बुरी तरह प्रभावित किया है। वर्तमान परिस्थिति जन साधारण से लेकर सरकार तक के लिए चुनौतियों से भरी हुई है।

तालाबंदी के समय में जब देश में सब कुछ ठप्प हो गया है, लोग डर और असुरक्षा की भावना में रहने को बाध्य हैं, तब जरुरत इस बात की हुई कि उनको कैसे इस निराशा से निकाला जाये । ऐसी स्थिति से निबटने के लिए डिजिटल माध्यमों से अनेक साहित्यिक एवं रचनात्मक कार्यों को संचालित किया जा रहा है। विभिन्न संस्थाओं की ओर से जूम एप्प, माइक्रोसॉफ्ट आदि के माध्यम से वेबिनार, फेसबुक लाइव, कॉन्फ्रेंस आदि का संचालन किया गया । इसके साथ ही काव्योत्सव, व्यंग्योत्सव, कथा वाचन, लेखन की विभिन्न विधाओं पर परिचर्चाएँ, देश की आर्थिक एवं राजनैतिक मामले, सुरक्षा व्यवस्था, खाद्य आपूर्ति, शैक्षिक मामलों में चर्चा जैसी गतिविधियों ने लोगों को व्यस्त किए रखा । सृजनात्मक पक्ष की दृष्टि से यह एक सुखानुभूति हो सकती है, कुछ गंभीर विषयों को समझने में भी इनसे अवश्य मदद मिली होगी किन्तु देश के बौद्धिक, विद्वत एवं शिक्षित वर्ग द्वारा भाषा जैसे गंभीर और संवेदनशील विषय पर कहीं कोई परिचर्चा का न होना देश के लिए एक निराशाजनक एवं चिंतनीय विषय है। एक भाषा चिन्तक के रूप में आँकलन किया जाए तो इस महामारी में अन्य क्षेत्रों की तरह बड़ा नुकसान भाषा के क्षेत्र में भी हुआ है। हमारी बोलचाल की भाषा में जहाँ आसान और सरल हिन्दी के शब्द प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं, पर उनकी जगह बार-बार अंग्रेजी के जटिल शब्दों का प्रयोग लगातार हो रहा है । इस समय आम जनता में टेलीविजन मीडिया, पत्रकारिता, सरकारी संस्थानों, विशेषज्ञों एवं वक्ताओं आदि के द्वारा जिस भाषा का प्रयोग किया जा रहा है वो भाषा आम नागरिकों के सरोकारों से सम्बंधित नहीं है। देश की बहुत बड़ी आबादी अशिक्षित एवं अल्प शिक्षित है। यह वर्ग हाड़तोड़ परिश्रम से जैसे-तैसे अपनी गृहस्थी चला पाता है। इन वर्गों के लिए अंग्रेजी के शब्दों एवं वाक्यों का सम्प्रेषण करना असमानता की खाई को और अधिक बढ़ा देता है। यह समस्याएँ केवल गाँव, देहात, कस्बों तक ही सीमित नहीं है बल्कि महानगरों का भी यही हाल है। आइसोलेशन, क्वारेन्टीन, सेनिटाइजर, इम्युनिटी, पी.पी.ई. किट, प्रि-कॉशन, हाइजिन, सोशल डिस्टेंस, इसेंशियल सर्विस, माइग्रेट लेबर, फॉरेन एक्सपर्ट, लैब टेस्टिंग, लॉकडाउन, कोरोना सिम्टम्स, वारियर्स, डिस्टेंस मेंटेन, इक्विपमेंट आदि जैसे कई अंग्रेजी के शब्दों का इस संक्रमण काल में खूब प्रयोग किया गया। यह वे शब्द हैं जिनको देश की बहुत बड़ी आबादी ने पहली बार सुना। यह वे शब्द हैं जिनके लिए हमारे पास अपने शब्द भण्डार हैं। किन्तु इस महामारी में मीडिया, अखबार, शैक्षिक संगठनों, साहित्यिक क्षेत्रों तथा उच्चस्थ पदों पर विराजमान नौकरशाहों, प्रशासनिक अधिकारियों आदि ने यह सिद्ध कर दिया है कि उनका अंग्रेजी से प्रेम अनन्य है। अपने ही देश के नागरिकों को प्रवासी बताया जाना और भी निराशाजनक है। इसे शब्दों का अनुचित प्रयोग कहा जाए या सामाजिक सोच? सरकारी योजनाओं एवं प्रशासनिक कार्यों की सुविधा के लिए देश को भौगोलिक रूप से कई राज्यों में बांटा गया है लेकिन इन राज्यों में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति अखण्ड भारत देश का नागरिक है। देश के किसी भी राज्य में कोई भी नागरिक अपनी सेवाएँ या श्रम दे सकता है। इसका यह आशय कदापि नहीं है कि वे प्रवासी हैं। प्रवासी शब्द जहाँ विदेश में काम करने वाले नागरिकों के लिए प्रयोग किया जाता है, उसका प्रयोग देश के नागरिकों के लिए किया जाना अपनी भाषा के शब्दों की जानकारी का अभाव दर्शाता है। दूसरी तरफ इस तरह की भाषा ने आम जनता में अविश्वास एवं क्षेत्रवाद को पनपने दिया है, वहीं लोगों में इस धारणा को बढ़ावा देने का काम किया है कि वे अपने राज्यों तक ही सीमित हैं। देखा जाए तो यह न केवल देश की व्यवस्था के लिए खतरनाक है बल्कि भाषा का सरासर दुष्प्रचार भी है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि हमें निज भाषा के प्रति कतई भी गर्वानुभूति नहीं है। राष्ट्रीय मुद्दों और समस्याओं को संबोधित करने के लिए, सामाजिक सुरक्षा के विषय में जन चेतना बढ़ाने के लिए, समकालीन घटनाओं को व्यक्त करने लिए, अंग्रेजी शब्दों का सहारा लेने की प्रवृत्ति, भाषा के प्रति हमारा गैर जिम्मेदाराना व्यवहार और भाषाई दरिद्रता को उजागर करता है। आइये हम प्रार्थना करें कि इस वैश्विक महामारी से हमें शीघ्र ही निदान मिले। हम यह प्रण लें कि हम निज भाषा में उपलब्ध हिन्दी के आसान शब्दों के प्रयोग को बढ़ाएंगे तथा अभिव्यक्ति के लिए अंग्रेजी के प्रति अपनी निर्भरता को खत्म करेंगे । शब्दों का सही और सटीक प्रयोग कर सामाजिक अनुशासन तथा भाईचारे की भावना को बढ़ाएंगे ।

साक्षात्कार : प्रो. कुमुद शर्मा, शिक्षाविद्, आलोचक एवं मीडिया विश्लेषक

भारतीय संस्कृति की संवाहिका हिन्दी राष्ट्रभाषा पद की अधिकारिणी है।

प्रो. कुमुद शर्मा

वरिष्ठ समीक्षक, मीडिया विश्लेषक, अनुवादक, संपादक एवं लेखिका प्रो. कुमुद शर्मा हिन्दी साहित्य जगत एवं मीडिया के क्षेत्र में एक चर्चित नाम है। उच्च शिक्षा के क्रम में आपने एम.ए. (नए कीर्तिमानों के साथ तीन स्वर्ण पदक) तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से पीएचडी की है। आधुनिक साहित्य, स्त्री विमर्श एवं मीडिया आपके लेखन के क्षेत्र हैं। दूरदर्शन एवं आकाशवाणी पर कई साहित्यिक कार्यक्रमों की प्रस्तुति दे चुकीं प्रो. कुमुद शर्मा एक विद्वत वक्ता हैं। कई सरकारी तथा गैर सरकारी आयोजनों में मीडिया, साहित्य, सामाजिक एवं राष्ट्रीय महत्व के विषयों पर मुख्य वक्ता एवं विशिष्ट अतिथि के रूप में आपकी अनिवार्य उपस्थिति रहती है। आप भारतीय साहित्यकार संगठन की महामंत्री भी हैं। कई राष्ट्रीय चैनलों एवं ऑनलाइन चैनलों में लगातार आपके साक्षात्कार प्रसारित होते रहते हैं। हिन्दी के निर्माता, भूमंडलीकरण और मीडिया, विज्ञापन की दुनिया, जनसंपर्क प्रबंधन, स्त्रीघोष, १००० हिन्दी साहित्य प्रश्नोत्तरी आदि आपकी उल्लेखनीय पुस्तकें हैं। आप साहित्य अमृत मासिक साहित्यिक पत्रिका की संयुक्त संपादक रह चुकी हैं। कई अंग्रेजी कहानियों का आपने अनुवाद भी किया है। नवभारत टाइम्स, इंडिया टूडे, जनसत्ता, इंद्रप्रस्थ भारती, चौथी दुनिया, दैनिक हिन्दुस्तान, वर्तमान साहित्य आदि प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में आपके समीक्षात्मक एवं सामाजिक विषयों से सम्बंधित लेख प्रकाशित हो चुके हैं। प्रसार भारती बोर्ड की लिटरेरी कोर कमिटी की सदस्य रह चुकी प्रोफेसर कुमुद शर्मा को साहित्य एवं मीडिया के क्षेत्र में आपके उल्लेखनीय कार्यों को रेखांकित करते हुए साहित्य श्री सम्मान, प्रेमचंद रचनात्मक लेखन पुरस्कार सहित कई सम्मानों से सम्मानित किया जा चुका है। उल्लेखनीय सृजन के लिए आपको दो बार सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय का भारतेंदु हरिश्चंद्र पुरस्कार प्रदान किया गया है। वर्तमान में आप दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं। इसके साथ ही आप निदेशक के रुप में हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय का अतिरिक्त दायित्व भी संभाल रहीं हैं।

प्रश्न : आप महत्वपूर्ण पद को सुशोभित कर रहीं हैं। आप समाज में एक स्थापित व्यक्तित्व के रूप में जानी जातीं हैं । हम आपके यात्रानुभाव के बारे में जानना चाहते हैं ।

उत्तर : मैं मेरठ में जन्मी और मेरे व्यक्तित्व को आकार दिया साहित्यिक-सांस्कृतिक नगरी प्रयागराज ने। विवाह के उपरान्त दिल्ली के संघर्ष और चुनौतियों ने मुझे दृढ़ता और आत्मविश्वास दोनों दिया। आज दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रोफेसर हूँ। साथ ही निदेशक के रुप में हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय का अतिरिक्त दायित्व भी संभाल रही हूँ।

मेरी अब तक की जीवन यात्रा बड़े अप्रत्याशित मोड़ों से गुजरी। रास्ते कहीं के लिये तैयार कर रही थी रास्ता कहीं और खुलता गया। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बी.ए. की मेरिट लिस्ट में नाम दर्ज कराया। एम.ए. में तीन स्वर्णपदक के साथ सर्वोच्च अंकों का रिकॉर्ड बनाया। प्रशासनिक परीक्षा की तैयारी के लिये मन में दृढ़ संकल्प बना हुआ था । मगर अचानक अप्रत्याशित तरीके से प्रेम का प्रस्ताव और फिर विवाह । जीवन की दिशा ही बदल गयी। विवाह के उपरान्त ही नयी कविता और राष्ट्रीयता पर पीएच.डी., ग्लोबल मीडिया पर डी. लिट. की। एम.ए. करते ही इलाहाबाद में ही अध्यापन कार्य शुरु हो गया था। विवाह के उपरान्त दिल्ली आने पर दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य से जुड़ी। दिल्ली में अध्यापन कार्य के साथ-साथ मैंने इलाहाबाद से अर्जित अपनी साहित्यिक-सांस्कृतिक अभिरुचियों के विकास का रास्ता भी खोजा। मेरे लेखन की शुरुआत 19 वर्ष की आयु में इलाहाबाद से अमृत बाजार पत्रिका समूह के अखबार 'अमृत प्रभात' से हो चुकी थी। मेरा पहला लेख 'अनुशासनहीनता की जड़ें कहाँ हैं?' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। इलाहाबाद में रहते हुए साहित्यिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विषयों पर लेखन चलता रहा। आकाशवाणी इलाहाबाद में कई कार्यक्रमों की प्रस्तुति की। रेडियो नाटक भी किए। दिल्ली आने पर जनसत्ता, सारिका, नवभारत टाइम्स, वामा, कादम्बिनी, इन्डिया टुडे जैसी पत्र-पत्रिकाओं में लेखन चलता रहा। जनसत्ता में आधी दुनिया के अन्तर्गत 'स्त्री' रचनाकारों के संसार पर 'स्त्री' शीर्षक से एक श्रृंखला लिखी। दिल्ली में आकाशवाणी और दूरदर्शन से भी जुड़ी। दूरदर्शन पर 'घर-बाहर', 'पत्रिका', 'कला परिक्रमा', 'मेरी बात' जैसे कार्यक्रमों की प्रस्तुति की। प्रसार भारती लिटरेरी कोर कमेटी की सदस्य के नाते साहित्यिक कृतियों पर बनी फिल्मों के निर्माण से सम्बद्ध रही। एक नया मोड़ तब आया जब प्रख्यात चिंतक, मनीषी पं. विद्यानिवास मिश्र ने अचानक साहित्यिक पत्रिका 'साहित्य अमृत' के सह संपादन का प्रस्ताव रखा। 'साहित्य अमृत' में संयुक्त संपादक के रूप में उनका सान्निध्य और स्नेह मिला। शीघ्र ही वह मेरे बाबू जी बन गये। हिन्दी के प्रति मेरी निष्ठा और सेवा के संकल्प को खाद-पानी उन्हीं से मिलता रहा है। पंडित जी के सुझाव और प्रस्ताव पर साहित्य अमृत में उनके बनाये फ्रेमवर्क में 'हिन्दी के निर्माता' शीर्षक से लगभग सात वर्ष कॉलम लिखा। यही सामग्री भारतीय ज्ञानपीठ से 'हिन्दी के निर्माता' नाम से ही पुस्तक के रूप में प्रकाशित होकर पाठकों के बीच लोकप्रिय हुई। कम समय में ही जिसके चार संस्करण आ गये। हिन्दी के प्रति अपनी गहरी निष्ठा

के कारण हिन्दी के लिए राष्ट्रीय-अन्तराष्ट्रीय जगत से जब भी आमन्त्रण मिलता है, मैं सहर्ष स्वीकार करती हूँ। दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन और प्रशासनिक दायित्व के निर्वाह के साथ-साथ साहित्य, मीडिया और सांस्कृतिक मंचों पर मेरी सक्रियता मुझे निरन्तर ऊर्जा देती है। स्त्री विमर्श के मुद्दे मुझे निरन्तर आंदोलित करते हैं। यही मेरे अध्ययन और शोध के क्षेत्र भी हैं। यायावरी प्रवृत्ति की हूँ। मेरे लिए निजी वाहन से लम्बी दूरी की सड़क यात्रा का आंनद उठाते हुए प्रकृति और जीवन के रिश्ते की बारीकियाँ समझने का सुख निराला होता है। अब तक की जीवन की यात्रा में उपलब्धियाँ संघर्ष से ही हासिल हुई हैं।

प्रश्न : जब राष्ट्र और राष्ट्रीयता की बात होती है तो उसके साथ राष्ट्रभाषा का प्रश्न स्वतः ही आ जाता है । अब तक हम अपनी राष्ट्रभाषा घोषित नहीं कर पाये हैं। आपके अनुसार इसके क्या कारण हो सकते हैं ?

उत्तर : राष्ट्र और राष्ट्रीयता के साथ राष्ट्रभाषा का प्रश्न स्वतः ही इसलिये आता है क्योंकि भारतीय राष्ट्रीयता को भाषाई एकता से बल मिला है। आज भले ही कुछ चिंतक किसी राष्ट्र के लिये एक भाषा की संकल्पना को आधारहीन अथवा तथ्यहीन मानें लेकिन स्वाधीनता आंदोलन के दौरान हिन्दी की उन्नति का कार्य राष्ट्रीय कर्म माना गया। इसीलिए भारतेंदु का 'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल' उद्घोष एक भाषा के द्वारा राष्ट्रीयता की भावना को प्रबल करने का संकेतक ही था। भाषा एकता का आधार होती है। इसलिए राष्ट्र निर्माण के लिये भाषा का पुनरुद्धार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया। हिन्दी को भारतीय संस्कृति के गौरव की संवाहिका मानकर 'सब मिल बोलो एक आवाज अपने देश में अपना राज' का निनाद करते हुए उसे राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन करने का स्वप्न देखा गया। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की अपीलों और दलीलों को हिन्दी भाषा के इतिहास के पन्नों पर देखा जा सकता है। मगर विडम्बना है कि आजादी के बाद हम हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित नहीं कर पाये। यही नहीं उसके राजभाषा बनने का रास्ता भी सुगम और सुविधाजनक नहीं रहा । हिन्दी के राजभाषा बनने की यात्रा भी दुर्गम थी। राजभाषा की प्रगति का परिदृश्य भी बहुत संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। हिन्दी के राष्ट्रभाषा बनने के मार्ग की बाधाएँ बनी दक्षिण प्रांत की भाषाएँ और हिन्दी-उर्दू विवाद । हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित होने का स्वप्न राजनीतिक दुष्चक्र के चलते टूट गया।

प्रश्न : 11 वें विश्व हिन्दी सम्मेलन के मंच से पूर्व विदेश मंत्री ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए गंभीर प्रयास किए जाने की बात कही थी। 14 सितम्बर, 2019 (हिन्दी दिवस) को माननीय गृहमंत्री ने भी 'एक राष्ट्र-एक भाषा' की बात कही है। क्या हिन्दी प्रेमी यह मान के चलें कि आने वाले दिनों में हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित किया जा सकता है ?

उत्तर : पूर्व विदेश मंत्री स्व. सुषमा जी हिन्दी के लिए समर्पित थीं। उनका हिन्दी प्रेम, भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी आस्था ही थी जिसके कारण उन्होंने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए गंभीर प्रयास किए जाने की बात कही थी। उनका संकेत यही था कि भारतीय संस्कृति की संवाहिका हिन्दी राष्ट्रभाषा पद की अधिकारिणी है। उसमें राष्ट्रभाषा बनने की सारी क्षमताएँ मौजूद हैं। हिन्दी के स्वाभिमान और सम्मान की रक्षा के लिए उसे राष्ट्रभाषा का दर्जा मिलना चाहिए। मैं समझती हूँ कि वर्तमान नेतृत्व ने नेहरु युग की विदाई कर दी है । यह ऐतिहासिक 'निराशा' से मुक्ति का दौर है। मोदी युग ने एक-एक करके अतीत के नेतृत्व की ऐतिहासिक भूलों में संशोधन और परिवर्तन का क्रम भी चला दिया है। मोदी सरकार राष्ट्र की जड़ों को सींच रही है। तीन तलाक, 370 का निरस्तीकरण तथा नागरिक संशोधन कानून के माध्यम से राष्ट्रीय अस्मिता की निर्मिति हो रही है। हमारे देश के प्रधानमंत्री और गृहमंत्री देश के वृहत्तर राष्ट्रीय-सांस्कृतिक आयामों को विस्तार दे रहे हैं। इसलिए यह उम्मीद जगती है 'एक राष्ट्र-एक भाषा' के मुहावरे में हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का सपना पूरा हो सकता है।

प्रश्न : नई शिक्षा नीति का जब प्रारूप आया तो उसके ठीक अगले दिन ही दक्षिण प्रांत के राज्यों के विरोध के कारण सरकार ने हिन्दी की अनिवार्यता शब्द को प्रारूप से हटा दिया । आप इसको किस रूप में देखतीं हैं ?

उत्तर : दक्षिण प्रांतों के राज्यों के विरोध के कारण सरकार द्वारा हिन्दी की अनिवार्यता शब्द को प्रारूप से हटा दिया जाना इस बात का संकेत है कि निहित राजनैतिक स्वार्थों के कारण हिन्दी विरोध जारी है। दक्षिण के राज्यों की राजनैतिक पार्टियों का यह कहना कि सरकार हम पर हिन्दी थोप रही है। यह दर्शाता है कि राजनीतिक भँवर जाल ने हिन्दी का कितना अहित किया है। हमें यह भी जानना चाहिये कि उसी दौरान तमिलनाडु से ही तमिल भाषा के लिए चरमपंथी राजनीति करनेवाली राजनैतिक पार्टी 'पुदिया तमिझगम' ने जो कि अनुसूचित जाति और जनजाति की पार्टी है, उसने खुलेआम हिन्दी का झंडा बुलंद किया। वह सड़कों पर उतरी । उसने कहा कि हमें प्रदेश में हिन्दी चाहिए। हम पिछड़ रहे हैं। इसके लिए उसने लम्बा प्रदर्शन किया और नारे लगाये, जुलूस निकाला। वर्तमान सत्तारुढ़ क्षेत्रीय सरकार एडीएमके की है। उसने भी 'पुदिया तमिझगम' के हिन्दी समर्थक आंदोलन का विरोध नहीं किया। व्यक्तिगत स्तर पर एक-दो नेताओं ने विरोध जरुर जताया लेकिन पार्टी का कोई आधिकारिक वक्तव्य हिन्दी के विरोध में नहीं आया। इसको समर्थन ही समझना चाहिए और यही कारण है कि- जब पुदिया तमिझगम के लोगों ने हिन्दी के समर्थन में प्रदर्शन किया और जुलूस निकाला तो प्रदेश में अन्ना द्रमुक की वर्तमान सरकार ने जुलूस और प्रदर्शन के खिलाफ कोई कार्यवाही नहीं की। इसका सकारात्मक पक्ष यह है कि जिन राजनैतिक कारणों से डीएमके हिन्दी का विरोध कर रही है उन्हीं राजनैतिक कारणों से

अन्ना द्रमुक की वर्तमान सरकार मौन समर्थन दे रही है और दोनों पार्टियों के बीच इस विषय पर गहरे मतभेद उभर रहे हैं, जो कि संभावना है कि भविष्य में ये और भी गहरे होगें, यही इसका सकारात्मक पक्ष है।

प्रश्न : त्रिभाषा सूत्र को लेकर राज्यों में जो विवाद हैं उसके समाधान के लिए क्या उपाय किये जाने चाहिए? एक बहु-भाषी राष्ट्र होने के कारण देश की शिक्षा नीति में त्रिभाषा सूत्र कितना उपयोगी है ?

उत्तर : मेरे मन में एक प्रश्न अक्सर उठता है कि हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए हम सरकार पर निर्भर क्यों हो जाते हैं? हमारे बीच हिन्दी के ऐसे नि:स्वार्थ योद्धा क्यों नहीं है जो हिन्दी की मांग के प्रश्न को अधिकार समझकर अभियान चलायें अथवा हिन्दी की मांग के प्रश्न को सांस्कृतिक समझ कर अभियान चलायें। त्रिभाषा सूत्र पर विवाद का समाधान यही है कि दक्षिण भारत के राज्य अपने स्कूलों में हिन्दी सिखाने के लिये तैयार हों और हिन्दी भाषी राज्य अपने स्कूलों के पाठ्यक्रम में दक्षिण भारतीय भाषा को सम्मिलित करें। हमें हिन्दी और भारतीय भाषाओं के बीच समन्वय और सहभागिता बढ़ानी होगी। एक बहुभाषी राष्ट्र होने के कारण देश की शिक्षा नीति में त्रिभाषा फार्मूला बहुत उपयोगी है। देश के शैक्षणिक और सांस्कृतिक परिदृश्य में सकारात्मक बदलावों के लिए इसे लागू किये जाने की जरुरत है। त्रिभाषा सूत्र हिन्दी और भारतीय भाषाओं के हित में है यह बात व्यापक स्तर पर समझने की जरुरत है।

प्रश्न : संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित होने के लिए लगभग ४० से अधिक भारतीय भाषाएँ कतार में हैं, इस पर आपकी क्या प्रतिक्रिया है? आठवीं अनुसूची के विवाद को आप किस रूप में देखतीं हैं?

उत्तर : भोजपुरी को संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित करवाने की मांग में उठे स्वरों के तेवर देख रही हूँ। इस सूची सम्मिलित होने के लिए लगभग 40 भाषाएँ कतार में हैं। यह दरअसल भाषा के नाम पर राजनीति का खेल है। हम क्यों भूल रहे हैं कि अनेक उपभाषाओं, बोलियों के समन्वय से ही हिन्दी का स्वरुप निर्मित हुआ है। अवधी में लिखा गया 'रामचरितमानस' न केवल हिन्दी साहित्य के इतिहास की अमूल्य धरोहर है, बल्कि वह विश्व फलक पर हिन्दी का ध्वज भी है। ब्रज भाषा में लिखी गई अनेक कृतियाँ हिन्दी साहित्य की अमूल्य विरासत हैं। अनेक बोलियों के साथ हिन्दी के अर्न्तसंबंधों ने हिन्दी को मजबूत किया। हिन्दी के साथ घुलमिलकर सांस्कृतिक परम्परा की साझेदारी की। हिन्दी को धार दी। हिन्दी लोकभाषाओं के साथ बोलते बतियाते और गुनगुनाते हुए आगे बढ़ी हैं। इसमें अनेक लोक भाषाओं की, अनेक बोलियों की मिठास और लावण्य है। भोजपुरी, अवधी, ब्रज आदि हिन्दी की ही निधियाँ हैं। अगर हिन्दी के फलक से इन्हें अलग किया जाये तो हिन्दी का वितान सिकुड़ जायेगा। हिन्दी की शक्ति और सामर्थ्य पर प्रभाव पड़ेगा। क्योंकि हिन्दी की शक्ति का पैमाना संख्याबल है। जिस तरह राजनीति ने निहित स्वार्थों के कारण समाज को जाति और वर्ग के खाँचे में बाट दिया वैसी ही चतुराई आज भाषा के नाम पर कुछ निहित स्वार्थों के कारण की जा रही है।

प्रश्न : वैज्ञानिक रूप से जब स्पष्ट हो चुका है कि प्राथमिक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो फिर भी हम अब तक इसे क्यों लागू नहीं कर पा रहे हैं?

उत्तर : राजनीतिक इतिहास इस बात का गवाह है कि आजादी के बाद भाषा के संदर्भ में हमारे संकल्पों में कहीं न कहीं कमी रही। दृढ़ संकल्प और ईमानदारी से प्रयास किए जाते तो संभवत: परिदृश्य कुछ और होता। मैकाले की शिक्षा पद्धति लागू हुई तो हिन्दी पर अंग्रेजी का प्रभुत्व स्थापित होता चला गया। मशरूम की तरह देश भर में अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों की बढ़ोतरी ने मातृभाषा की अपेक्षा अंग्रेजी के प्रति विश्वास पैदा किया। नर्सरी और पहली कक्षा से अंग्रेजी और रोमन लिपि सीखने वाले बच्चों में हिन्दी पढ़ने-लिखने और सीखने के प्रति उदासीनता बढ़ती गयी। कितनी बड़ी विडम्बना है कि हमने आजादी के बाद हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दिया लेकिन साथ ही अंग्रेजी के प्रयोग को जारी रखने की नीति भी बना डाली। 1968 के राजभाषा संकल्प के अन्तर्गत शिक्षा नीति में समग्र देश में त्रिभाषा सूत्र लागू किये जाने की अपेक्षा अभी तक पूर्ण नहीं हो सकी।

प्रश्न : युवा पीढ़ी में हिन्दी को लेकर जो हीन भावना एवं वितृष्णा है उसके बारे में आप क्या कहना चाहेंगीं ? इसे कैसे कम किया जा सकता है?

उत्तर : युवा पीढ़ी में ऐसे लोगों की कमी नहीं जो सांस्कृतिक दृष्टि से असमंजस और ऊहापोह की स्थिति में रहते हैं। फिर भी मैं कहना चाहूँगी हिन्दी के प्रति वितृष्णा नहीं हीन भावना जरुर है। हिन्दुस्तान में रहकर हिन्दी के प्रति वितृष्णा का भाव नहीं रखा जा सकता। आप कितने भी अंग्रेजी दाँ हों, लेकिन घर-परिवार, पास-पड़ोस, गली मोहल्ले, सड़क पर, बाजार में, हिन्दी के बिना भी काम नही चल सकता। आज के युवा का दिल हिन्दी में ही धड़कता है । मैंने आज की युवा पीढ़ी को पुराने फिल्मों के हिन्दी गानों को तन्मयता से सुनते देखा है। हाँ, प्रदर्शन के भाव के कारण अंग्रेजी के प्रति मोह और हिन्दी के प्रति उपेक्षा का भाव जरूर दिखायी पड़ता है। इसका सीधा सा कारण है कि अंग्रेजी अभिजात्य का मानक बन गयी है। युवा पीढ़ी को क्या दोष दें। हिन्दी सेवा की लीला भाव में तरह-तरह के खोट नजर आ जायेंगे। कभी रिटायरमेंट से प्राप्त खाली अवकाश को भरने के लिए अथवा अन्य किसी निहित स्वार्थों से हिन्दी के अभियान से जुड़े लोगों में भी मैंने बड़े मोहक भाव से अंग्रेजी के प्रति ऐसी दासता देखी है। अंग्रेजी के प्रति मोह को तोड़ने में राष्ट्रीय शिक्षा नीति में त्रिभाषा सूत्र कारगर हो सकता है।

प्रश्न : आजकल युवाओं में बोलचाल के लिए हिंग्लिश और लिखने के लिए रोमन लिपि का प्रयोग लगातार बढ़ रहा है । इससे भारतीय भाषाओं की लिपि पर जो संकट है उस पर आप क्या कहना चाहेंगीं ?

उत्तर : बिल्कुल सही कहा आपने। बोलचाल में हिंग्लिश और लिखने में रोमन लिपि अंग्रेजी भाषा के बढ़ते प्रभाव का परिणाम है। सोशल मीडिया के वितान में और हिन्दी के अखबारों में जगह-जगह रोमन लिपि का प्रयोग इस बात का प्रमाण है कि भारतीय भाषाओं की लिपि पर रोमन लिपि का दबाव निरन्तर बढ़ता जा रहा है। हिन्दी और तमाम भारतीय भाषाओं और उनकी लिपियों के संरक्षण और विकास के लिए सरकारी और गैर सरकारी स्तर पर प्रयास किए जाने की जरुरत है।

प्रश्न : उच्च शिक्षा में हिन्दी की पुस्तकों का अभाव व हिन्दी में रोजगार के न के बराबर अवसर से हिन्दी पिछड़ रही है, इस पर आपकी क्या राय है?

उत्तर : उच्च शिक्षा में समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र, विज्ञान जैसे विषयों में हिन्दी पुस्तकें अंग्रेजी की अपेक्षा कम हैं। लेकिन ऐसी पुस्तकों का अकाल तो बिल्कुल नहीं हैं। अनेक सरकारी और व्यावसायिक प्रकाशन इन विषयों में अंग्रेजी पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद उपलब्ध करा रहे हैं। बहुत प्रामाणिक जानकारी आपको देना चाहूँगी कि आज अंग्रेजी के प्रकाशक अपने यहाँ से प्रकाशित अंग्रेजी की किताब का हिन्दी संस्करण प्रकाशित करने की पहल करते दिखायी दे रहे हैं। जहाँ तक रोजगार की बात है तो मैं कहना चाहूँगी कि हिन्दी में रोजगार की संभावनाएँ निरन्तर बढ़ रही हैं। भूमंडलीकरण के बाद हिन्दी मीडिया का जो विस्तार हुआ है, उसके आयाम जिस तरह व्यापक हुए हैं, उसने हिन्दी में रोजगार के अनेक अवसर उपलब्ध करायें हैं। ज्ञान के प्रचार-प्रसार में हिन्दी अनुवादकों की जरुरत बढ़ गयी है। विज्ञापन बाजार में हिन्दी खिलखिला रही है। विज्ञापन कम्पनियाँ अच्छे विज्ञापन कॉपी लेखक को आकर्षक धनराशि दे रही हैं। आज हिन्दी मनोरंजन उद्योग की प्रमुख भाषा है। हिन्दी सांस्कृतिक उद्योग की रीढ़ है जिससे देश के अर्थतंत्र को मजबूती मिल रही है। तमाम विरोधाभासों के बीच हिन्दी की आवश्यकता नये युग की मांग है। यही कारण है कि अंग्रेजी चैनल पर 'अब हिन्दी हो जाय' का मुहावरा जोर पकड़ रहा है। हिन्दी अपनी प्रकृति और वैशिष्टय के कारण पिछड़ नहीं सकती ।

प्रश्न : अंग्रेजी का दिन-प्रतिदिन बढ़ता रुतबा और सरकारी नीतियों के कारण हिन्दी सहित अन्य भारतीय भाषाओं के भविष्य को आप किस रूप में देखती हैं?

उत्तर : अंग्रेजी का बढ़ता वर्चस्व और सरकारी कामकाज में राजभाषा अधिनियमों के अन्तर्गत हिन्दी की प्रगति का निर्धारित लक्ष्यों से दूर रहना चिंता तो जरुर पैदा करता है लेकिन इसके बावजूद मैं हिन्दी के भविष्य को लेकर निराश और हताश कतई नहीं हूँ। जरुरत सिर्फ चौतरफा प्रयास किए जाने की है। जरुरत है दृढ़ राजनैतिक इच्छा शक्ति की। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जिस तरह हिन्दी का विस्तार और फैलाव हो रहा है, विश्व के अनेक देशों के विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में बढ़ती हिन्दी की मांग इस बात का संकेत है कि आने वाले समय में हिन्दी अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क की भाषा बनने की क्षमता रखती है। इसलिए लगभग दस साल पहले प्रसिद्ध अमेरिकी यूनिवर्सिटी ने एम.बी.ए. के विद्यार्थियों को दो साल का एक प्रोग्राम हिन्दी पढ़ाने के लिए रखा। इस जॉइट डिग्री प्रोग्राम में विद्यार्थियों को हिन्दी में ट्रेनिंग देने के अलावा, भारत की संस्कृति, राजनीति, मूल्य और व्यवसाय से परिचित कराने की पाठ्यक्रम सामग्री भी जोड़ी गयी। ऐसी खबरें भी पढ़ने को मिल रही हैं कि दिल्ली के हाई कोर्ट में वकील की दलील पर हिन्दी में बहस करने की इजाजत दी गयी। ये घटनाएँ और बदलाव हिन्दी के भविष्य के प्रति आश्वस्त करते हैं। आज हिन्दी के पास संख्याबल है लेकिन भविष्य में हिन्दी का स्वाभिमान भी वापस लौटेगा ऐसा विश्वास जगता है।

प्रश्न : हिन्दी दिवस पर आयोजित होनेवाले समारोहों पर आपकी क्या टिप्पणी है ?

उत्तर : 14 सितम्बर हिन्दी दिवस निकट आते ही हिन्दी की गूँज सुनायी पड़ने लगती है। सरकारी कार्यालयों और कार्यालय के बाहर लटकने वाले बैनरों पर, सोशल मीडिया पर हिन्दी उत्सवधर्मिता में रंगी दिखायी पड़ती है। अधिकारियों-कर्मचारियों को संगोष्ठी-समारोह में हिन्दी के रंग सुहाने लगने लगते हैं। लेकिन हिन्दी सप्ताह, हिन्दी पखवाड़ा और हिन्दी माह बीतने के बाद कार्यालयों में हिन्दी बेरंग क्यों हो जाती है? क्यों हम अंग्रेजी की बैसाखी से हिन्दी को चलाते हैं? ये सवाल भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। मैं समझती हूँ कि कोई भी भाषा पुरस्कारों के लालच से या दंड के प्रावधान से नहीं चलायी जा सकती। हिन्दी के हित में आधे-अधूरे मन से किए गये सरकारी कार्य कुछ समय के बाद प्रभावहीन हो जाते हैं । जब तक हिन्दी के प्रति गहरी निष्ठा और गहरी प्रतिबद्धता का भाव नहीं जगेगा तब तक राजभाषा केवल आंकड़ों के खेल में ही उलझी रहेगी। राजभाषा को उसका अपेक्षित सम्मान नहीं मिलेगा।

प्रश्न : आप हमारे पाठकों को, विशेष रूप से युवाओं को क्या संदेश देना चाहेंगीं ?

उत्तर : युवाओं को मेरा यही संदेश है कि भाषा मानवीय उपलब्धि की अमूल्य धरोहर होती है। वह केवल संप्रेषण मात्र नहीं है, हमारी संस्कृति भी है। भाषा के विकास का मतलब है एक मौलिक संस्कृति का विकास, एक सभ्यता का विकास। हिन्दी और भारतीय भाषाओं के उज्ज्वल भविष्य के लिए वैचारिक और सामजिक लड़ाई में युवाओं की भागीदारी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। हिन्दी हमारे दिल की भाषा है, जोड़ने वाली भाषा है, तोड़ने वाली नहीं। मन से उसका सम्मान करें। हिन्दी को स्वाभिमान और सम्मान की भाषा समझें।

साक्षात्कार : राकेश मिश्र, कवि एवं प्रशासनिक सेवा अधिकारी (आई.ए.एस.)

युवा पीढ़ी को अपने संस्कारों एवं संस्कृति से जोड़कर रखना समाज, सरकार और अभिभावकों का उत्तरदायित्व है।

राकेश मिश्र

उत्तर प्रदेश के बलिया के मूल निवासी श्री राकेश कुमार मिश्र एक संवेदनशील कवि, विद्वत वक्ता, विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ एवं भारतीय प्रशासनिक सेवा अधिकारी (आईएएस) हैं। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से उन्होंने विधि में स्नातक की शिक्षा प्राप्त की। एस.डी.एम. के रूप में देवरिया जिले से अपनी करियर की शुरुआत करने वाले श्री राकेश मिश्र ने एक दर्जन से अधिक जिलों में उप जिलाधिकारी के पद पर अपनी सेवाएँ दीं हैं। 1996 बैच के पीसीएस श्री राकेश कुमार मिश्र वर्ष 2012 में आई.ए.एस. पद पर पदोन्नति हुए। 24 वर्षों से उत्तर प्रदेश सरकार की विभिन्न प्रशासनिक पदों पर कार्यानुभव प्राप्त श्री राकेश मिश्र ने 90 के दशक से लिखना प्रारंभ किया। पहली पुस्तक 'शब्दगात' के प्रकाशन के बाद हाल ही में उनके तीन काव्य संग्रहों-'चलते रहे रात भर', 'अटक गई नींद' एवं 'जिन्दगी एक कण है' प्रकाशित हुए हैं। छोटी-छोटी प्रेम कविताओं से भरपूर इन संग्रहों को साहित्य जगत में खूब सराहा जा रहा है। उनकी कविताओं में अनावश्यक चिंता और कुंठा की बजाय सामाजिक संबंधों, पारिवारिक रिश्तों, देहाती परिवेश, स्त्री विमर्श, अव्यवस्थित शहरीकरण, बाजारवाद, परंपरा, प्रशासन और व्यवस्था के साथ-साथ जीवन के छोटे-छोटे पहलुओं एवं महत्वहीन समझी जाने वाली घटनाओं के लिए गंभीर चिंतन पाया जाता है। अमर उजाला, जनसत्ता, नवभारत टाइम्स, हिन्दुस्तान, दैनिक जागरण, दैनिक प्रभात, दैनिक भास्कर, राष्ट्रीय सहारा, दैनिक जन संदेश, शिवना साहित्यिकी, नया ज्ञानोदय, राजस्थान पत्रिका, आजकल, हिमालिनी आदि जैसे प्रतिष्ठित अखबारों एवं साहित्यिक पत्रिकाओं में उनकी कविताएं तथा पुस्तकों की समीक्षा प्रकाशित होती रहती है। इटावा में हिन्दी सेवा निधि संस्थान द्वारा श्री मननाराण रत्नाकर शास्त्री अलंकरण प्रदान किया गया है। नोएडा प्राधिकरण के पूर्व अपर मुख्य कार्यपालक अधिकारी राकेश कुमार मिश्र वर्तमान में उत्तर प्रदेश के अम्बेडकर नगर के जिलाधिकारी पद पर सुशोभित हैं।

प्रश्न : हिन्दुस्तानी भाषा भारती पत्रिका की ओर से आपका हार्दिक स्वागत है। आप एक कवि, विभिन्न विषयों के ज्ञाता एवं भारतीय प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठ अधिकारी हैं। उत्तर प्रदेश सरकार के विभिन्न प्रशासनिक पदों पर कार्य करने का आपको दीर्घ अनुभव प्राप्त है। वर्तमान में आप उत्तर प्रदेश के अम्बेडकर नगर के जिलाधिकारी (डीएम) जैसे महत्वपूर्ण एवं प्रतिष्ठित पद पर सुशोभित हैं। कृपया हमारे पाठकों को यहाँ तक की अपनी यात्रानुभव को संक्षिप्त रूप में बताएं।

उत्तर : सेवा के शुरुआती वर्षों में ही पूर्वांचल के एक जिले में भीषण बाढ़ के दौरान जनता की सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ। प्रशासनिक सेवा की विशेषता इसकी विविधता ही है। विभिन्न जनपदों एवं शासन के कई महत्वपूर्ण पदों पर सेवा का अनुभव अच्छा रहा। इन सब में वर्तमान में कोरोना की चुनौती ही अभी तक सबसे मुश्किल चुनौती है। पर ईश्वर कृपा से यह समय भी बीत जायेगा।

प्रश्न : एक हिन्दी भाषी क्षेत्र का बालक जब अपने कस्बे से बाहर निकल कर देश की प्रतिष्ठित परिक्षाओं में बैठता है तो उसे भाषा के रूप में किस प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है ? आपकी कोई ऐसी घटना है जिसे आप यहाँ साझा करना चाहेंगे।

उत्तर : मेरी माध्यमिक तक की शिक्षा हिन्दी माध्यम से ही रही। आगे के वर्षों में अचानक ही अंग्रेजी की अनिवार्यता के कारण मेरी शिक्षा का स्वाभाविक प्रवाह लगभग रुक सा गया। अंग्रेजी सीखने तथा सर्वोपरि अंग्रेजी बोलने की चुनौती हिन्दी भाषी क्षेत्र के छात्रों के लिए कठिन कार्य होता है। मेरे कई ऐसे प्रतिभाशाली मित्र रहे हैं जो अंग्रेजी की अनिवार्यता के कारण बहुत चिन्तित तथा दबाव में रहते थे तथा उसका प्रतिकूल प्रभाव भी उनके कैरियर पर पड़ा।

प्रश्न : यह सर्वमान्य सत्य है कि किसी देश की उन्नति उस देश की शिक्षा नीति पर आधारित होती है और शिक्षा का प्रत्यक्ष संबंध उस देश की भाषा से होता है। आपके अनुसार अब तक क्या भारत की शिक्षा नीति अपने उद्देश्यों को पूरा करने में सफल हो पाई है ?

उत्तर : जैसा कि आप अवगत हैं भारत बहुभाषी तथा सांस्कृतिक बहुलता का देश है। भाषा केन्द्रित शिक्षा नीति की अपनी चुनौतियाँ होती हैं। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से प्रारम्भ होकर आज तक हिन्दी भाषा में विभिन्न विषयों, तकनीकियों एवं वैज्ञानिक विमर्श के ज्ञानार्जन हेतु पर्याप्त ज्ञान सम्पदा को सृजित करने की चुनौती बनी हुई है। मातृभाषा में पर्याप्त ज्ञान सामग्री के अभाव का प्रतिकूल असर स्थानीय मेधा पर पड़ता है। यह बात किसी से छुपी नहीं है। इसी कारण हम रूस, चीन, जर्मनी आदि देशों की तुलना में, जहाँ की

स्थानीय भाषा में ज्ञान-विज्ञान की पढ़ाई करायी जाती है, पिछड़े हुए हैं।

प्रश्न : अभी हाल में ही देश की नई शिक्षा नीति की घोषणा हुई है । इस नई शिक्षा नीति में भाषा की स्थिति पर आपकी क्या प्रतिक्रिया है ?

उत्तर : भारत के बहुभाषी देश होने के कारण शिक्षा की भाषागत चुनौतियाँ विश्व के अन्य देशों से बिल्कुल अलग एवं अनूठी हैं। वर्तमान शिक्षा नीति इस दृष्टि से बेहतर है कि उसमें संविधान के आठवीं अनुसूची में उल्लिखित भाषाओं से सम्बन्धित अकादमियों के गठन का उल्लेख है।

प्रश्न : कुछ राज्यों में माध्यमिक स्तर पर विद्यालयों में विदेशी भाषाओं (फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश) के समकक्ष हिन्दी को वैकल्पिक भाषा के रूप में और अंग्रेजी को अनिवार्य विषय के रूप में पढाया जा रहा है । इस के परिणामों पर आपके प्रतिक्रिया जानना चाहेंगे ?

उत्तर : जैसा कि मैने कहा कि भारत में यद्यपि हिन्दी सबसे बड़ी भाषा है तथा भारत के प्रत्येक हिस्से में बोली व समझी जाती है। इस प्रकार हिन्दी राष्ट्र की सांस्कृतिक एकता एवं अखंडता को भी सुनिश्चित करती है। भारत में विभिन्न भाषाओं जैसे बांग्ला, असमियां उड़िया, कन्नड़, तमिल, तेलगू, मलयाली, मराठी आदि भाषाएं भी अत्यन्त प्राचीन हैं तथा विपुल ज्ञान भण्डार से भरी हैं। अंग्रेजी व अन्य विदेशी भाषाओं के सामने उक्त भारतीय भाषाएं भी हिन्दी जैसी स्थिति का सामना कर रही हैं। देश के अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी का किसी न किसी रूप में पढ़ाया जाना शुभ संकेत है । इसकी प्रशंसा की जानी चाहिए। मैंने भारत के विभिन्न हिस्सों में भ्रमण के दौरान यह पाया है कि देश में व्यापार व कार्य व्यवहार बिना हिन्दी के सम्भव नहीं है। हिन्दी अपनी अपरिहार्यता से स्वतः ही आगे बढ़ेगी। जहाँ तक माध्यमिक स्तर पर विद्यालयों में विदेशी भाषाओं को पढ़ाये जाने का प्रश्न है, इसके सम्बन्ध में एक स्पष्ट नीति होनी चाहिए। हिन्दी को अनिवार्य किया जाना चाहिए। अंग्रेजी तो पठन-पाठन की भाषा अधिकतर निजी स्कूलों में पहले से ही है।

प्रश्न : वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं विभिन्न शोधों के माध्यम से यह सिद्ध हो चुका है कि बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए प्रारंभिक शिक्षा मातृभाषा में होनी चाहिए, लेकिन भारत में अब तक मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा के प्रावधान को लागू ना कर पाने के पीछे आप क्या कारण मानते हैं ?

उत्तर : यह सही है कि मातृभाषा में बच्चा सबसे तेजी से सीखता है। अधिकांश जगहों पर विशेष रूप से सरकार के विशाल शिक्षातंत्र में मातृभाषा के माध्यम से प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती है। परन्तु अंग्रेजी के अभिजात्य स्वरूप एवं सोच के कारण इसे सफलता एवं उच्च वर्ग की भाषा माना जाता है। भारत का अभिजात्य वर्ग यद्यपि हिन्दी अथवा अन्य भारतीय भाषाओं से विद्वेष का भाव नहीं रखता परन्तु उसका अंग्रेजी के प्रति अतिरिक्त लगाव स्पष्ट रूप से दिखता है। ऐसा कदाचित अंग्रेजी में उपलब्ध विपुल ज्ञान सम्पदा एवं उच्च शिक्षा के अवसर के कारण होता है। यह बात हमें नहीं भूलनी चाहिए।

प्रश्न : प्रशासनिक कार्यों के सिलसिले में आपको कई जगहों में कई लोगों से जमीनी स्तर पर मिलना और संवाद करना होता है। इन अवसरों पर अभिभावकों एवं उनके बच्चों के आपसी संवाद और अन्य लोगों से बातचीत की भाषा में आप क्या मुख्य अंतर पाते हैं ?

उत्तर : प्रशासनिक कार्यों के सिलसिले में भाषा की दिक्कतें नहीं आती। जमीनी स्तर पर जन सामान्य की भाषा में ही संवाद करने से सफलता मिलती है। जन समस्याओं की प्रकृति अनिवार्यतः स्थानीय होती है। स्कूल/कॉलेज में भ्रमण के दौरान भाषा का माध्यम हिन्दी-खड़ी बोली अथवा अंग्रेजी ही होती है। ऐसा संवाद की प्रकृति और उद्देश्य में अंतर के कारण होता है।

प्रश्न : युवा पीढ़ी वो तैयार जनशक्ति है जिस पर देश को गर्व होता है और देश को इनसे बहुत उम्मीदें भी होती हैं । भारत की युवा पीढ़ी विदेशी भाषाओं के चकाचौंध में गहरे धंसती जा रही है और अपनी भाषा, संस्कृति, संस्कारों एवं नैतिक मूल्यों से कटती जा रही है। यह एक चिंता का विषय है। इस विषय पर आप क्या कहना चाहेंगे ?

उत्तर : युवा पीढ़ी का विदेशी भाषाओं के चकाचौंध में धसना चिन्ता का विषय है। भाषा अपने साथ संस्कार भी अनिवार्यतः ले ही आती है। देशी भाषाओं से दूरी कभी न कभी युवा पीढ़ी को अपनी संस्कृति और परम्पराओं से दूर ले जाएगी। इसीलिए स्थानीय भाषाओं, बोलियों को प्रश्रय व प्राथमिकता देने की जरूरत है तथा युवा पीढ़ी को अनिवार्य रूप से अपने संस्कारों एवं संस्कृति से जोड़ कर रखना समाज, सरकार, अभिभावक सभी का उत्तरदायित्व है।

प्रश्न : महानगरों में प्राथमिक स्तर से ही अंग्रेजी को अनिवार्य विषय तथा माध्यमिक स्तर के बाद हिन्दी को विदेशी भाषाओं फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश आदि के समकक्ष वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ाया जाने लगा है। एक प्रशानिक अधिकारी के रूप में आप इसे कैसे देखते हैं ?

उत्तर : इसका उत्तर पूर्व के एक प्रश्न में दे चुका हूँ। फिर भी यह जोड़ना चाहूँगा कि हिन्दी को देश के अन्दर ही विदेशी भाषाओं के समकक्ष रखना उचित नहीं है परन्तु भाषाओं के प्रति स्थानीयता के मजबूत जुड़ाव के दृष्टिगत हिन्दी को अनिवार्य बनाया जाना भी एक संवेदनशील मुद्दा है जिस पर सहमति के आधार पर ही आगे बढ़ा जा सकता है।

प्रश्न : साधारणतयाः हिन्दी साहित्य की किताबें केवल लोकार्पण, किताबों के आदान-प्रदान, बधाई एवं शुभकामनाएं लेने-देने तक ही सीमित होती जा रहीं हैं। एक संवेदनशील कवि एवं हिन्दी के साहित्यकार होने के नाते हिन्दी साहित्य के नव पाठकों की संख्या में वृद्धि ना होने के पीछे आप क्या कारण देखते हैं ?

उत्तर : उक्त प्रश्न का एक साधारण उत्तर तो यह है कि मोबाइल, इंटरनेट, टी.वी. आदि की गहरी पैठ के कारण पढ़ने की प्रवृत्ति युवा पीढ़ी में कम हुई है। इसका प्रतिकूल प्रभाव स्पष्ट रूप से साहित्यिक पत्रिकाओं के प्रसार में देखा जा सकता है। एक लेखक के नाते यह कहना चाहता हूँ कि किसी भी कृति में यह दम होना चाहिए कि वह पाठक को अपने तक खींच ले तथा पढ़ने को मजबूर करे । साहित्य लेखन में नवीनता, सौंदर्य, करुणा, अपने परिवेश के प्रति संवेदनशीलता तथा सर्वोपरि संप्रेषणीयता अनिवार्य तत्व है। सपाट तथा नीरस लेखन प्रचार-प्रसार के द्वारा कुछ लागों तक पहुँच तो सकता है परन्तु अपने को पढ़वा नहीं सकता। इसका उदाहरण हम सबके घरों में स्थित पुस्तकों में ही मिल जायेगा जिसे आप किन्हीं कारणों से ले तो आये परन्तु पढ़ नहीं सके। हिन्दी पाठकों की संख्या पर मुझे कभी संदेह नहीं रहा है। पुस्तक मेलों में साहित्यिक पुस्तकों के खरीदार लाइन में लग कर पुस्तकें खरीदते हैं। ऑनलाइन पुस्तकों की उपलब्धता से पूरे विश्व में कोई भी गुणवत्तापूर्ण लेखन अपना विशाल पाठक वर्ग बना सकता है। मुझे हिन्दी पाठकों में बहुत उम्मीद दिखती है। कमी है तो गुणवत्तापूर्ण लेखन की। एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य की तरफ आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा कि देश एवं प्रदेश में तहसील एवं जिला स्तर पर साहित्यिक पुस्तकों को पहुँचाना भी एक चुनौती है। मैंने अपने अनुभव से यह देखा है कि जनपद स्तर पर भी पुस्तक मेले का आयोजन अत्यन्त सफल होता है तथा बहुत बड़ी संख्या में शहरी व ग्रामीण लोग पुस्तकें खरीदते हैं।

प्रश्न : इसी से जुड़ा हुआ एक अन्य प्रश्न है कि आपके अनुसार हिन्दी साहित्य की सेवा और हिन्दी की सेवा में क्या कोई अंतर है ? इसे आप किस दृष्टि से देखते हैं ?

उत्तर : अब हर कोई साहित्यकार तो नहीं हो सकता। परन्तु हिन्दी की सेवा प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है। जब हम गैरजरूरी कारणों एवं स्थान पर हिन्दी का प्रयोग न करके किसी अन्य भाषा का प्रयोग करते हैं तो हम हिन्दी का अहित कर रहे होते हैं। जो हिन्दी साहित्य की चिन्ता करते है, हिन्दी पुस्तकों के प्रचार-प्रसार मे लगे हैं, विश्व में हिन्दी को किसी न किसी रूप में पहुँचा रहे हैं, हिन्दी के ज्ञान कोष को संकलित एवं परिवर्धित कर रहे हैं अथवा हिन्दी के प्रति आत्म सम्मान का भाव रखते हैं वह सभी लोग हिन्दी की सेवा कर रहे हैं।

प्रश्न : आप बड़े पदों पर रहे हैं और वर्तमान में भी जिलाधिकारी जैसे जिम्मेदार पद पर हैं । क्या आपको साहित्य सृजन के साथ किसी अन्य रूप में अब तक भारतीय भाषाओं की सेवा करने का अवसर मिला है ?

उत्तर : मेरे प्रदेश उत्तर प्रदेश में हिन्दी सरकारी कामकाज की भाषा है। मेरे साहित्य सृजन से मेरे कार्यालय में काम करने वाले लोगों से बहुत मतलब नहीं रहता । हिन्दी पढ़ने तथा लिखने वाले व्यक्ति के रूप में मेरा ध्यान इस ओर रहता है कि सरकारी कामकाज में लिखने पढ़ने का तौर तरीका भाषा के दृष्टि से त्रुटि रहित हो । बातचीत के दौरान कई बार मिलने वाले लोगों से उनकी साहित्यक अभिरुचियों के बारे में पता चलता है । कई बार मेरे बारे में किसी माध्यम से जानकर स्थानीय साहित्यिक लोग जब मिलने आते हैं तो उनकी लेखकीय, प्रकाशकीय, साहित्य के प्रसार आदि मुद्दों पर जरूर चर्चा हो जाती है ।

प्रश्न : देश की क्षेत्रीय बोलियों, विशेषतयः हिन्दी पट्टी की बोलियों को आठवीं अनुसूची में सम्मिलित करवाने की होड़ लगी हुई है । आप इसको किस दृष्टिकोण से देखते हैं ?

उत्तर : देखिए ! शासकीय संरक्षण हर कोई चाहता है । परन्तु हिन्दी पट्टी की क्षेत्रीय बोलियाँ पठन-पाठन का माध्यम कभी नहीं रहीं। इस लिहाज से इनके बहुत आगे जाने की उम्मीद नहीं दिखती । यह जरूर है कि क्षेत्रीय बोलियों को आवश्यकता से अधिक महत्व मिलने पर हिन्दी का अहित ही होगा । हिन्दी को अभी बहुत आगे जाना है ।

प्रश्न : आप एक वरिष्ठ प्रशासनिक सेवा अधिकारी हैं। आपकी बातों को गंभीरता से सुना जाता है। आपकी बातों का प्रभाव समाज के निचले तबके तक पहुँचता है। आपने हमें अपना बहुमूल्य समय दिया, इसके लिए हम आपका आभार व्यक्त करते हैं। अंत में आप पत्रिका के पाठकों और विशेषकर युवा पीढ़ी को क्या संदेश देना चाहेंगे ?

उत्तर : युवा पीढ़ी को मेरा संदेश यही है कि अपनी रुचि के अनुसार अपनी मातृभाषा में उपलब्ध उत्कृष्ट साहित्य जरूर पढ़ें। उससे उनकी संवेदना, सोच एवं व्यक्तित्व का अनुकूल विकास होगा। व्यक्ति अपनी उम्र भर अपनी मातृभाषा में ही सोचता है तथा सपने देखता है। इसलिए मातृभाषा से दूरी उनकी सोच एवं समग्रता दोनों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करेगी। हाँ, ज्ञान-विज्ञान के उत्तरोत्तर संवर्धन एवं जीविकोपार्जन के लिए विदेशी भाषाओं का भी सम्यक ज्ञान अर्जित करना जरूरी है। शुभकामनाएँ ।

विश्व भाषा हिन्दी की अद्यतन स्थिति

डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय

इक्कीसवीं सदी बीसवीं शताब्दी से भी ज्यादा तीव्र परिवर्तनों वाली तथा चमत्कारिक उपलब्धियों वाली शताब्दी सिद्ध हो रही है। विज्ञान एवं तकनीक के सहारे पूरी दुनिया एक वैश्विक गाँव में तब्दील हो रही है और स्थलीय व भौगोलिक दूरियां अपनी अर्थवत्ता खो रहीं हैं। वर्तमान विश्व व्यवस्था आर्थिक और व्यापारिक आधार पर ध्रुवीकरण तथा पुनर्संघटन की प्रक्रिया से गुजर रही है। ऐसी स्थिति में विश्व के शक्तिशाली राष्ट्रों के महत्त्व का क्रम भी बदल रहा है। ऐसी स्थिति में इन राष्ट्रों की भाषाओं का महत्व भी नित नवीन श्रेणी प्राप्त कर रहा है। हिन्दी इस दृष्टि से नेतृत्वकारी भूमिका में है। उसे समय और समाज का यथोचित सहयोग मिल रहा है। अभी 14 सितंबर 2019 को हिन्दी दिवस के उपलक्ष्य में आयोजित समारोह में बोलते हुए गृहमंत्री श्री अमित शाह ने कहा कि हमें सारी भारतीय भाषाओं के विकास के साथ-साथ एक देश एक भाषा के सिद्धांत को भी अपनाने की जरुरत है । हम किसी पर कोई भाषा थोपना नहीं चाहते परंतु देश को एकसूत्र में जोड़ने के लिए हिन्दी के विकास के प्रति प्रतिबद्ध हैं। हम 2024 तक हिन्दी को अगले चरण में पहुंचा देंगे। इस बयान पर दक्षिण के कुछ राजनेताओं द्वारा बाकायदा राजनीति भी शुरू हो गई है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि हम हिन्दी की वर्तमान स्थिति से भलीभांति परिचित हो जाएँ।

बदलती दुनिया बदलते भाषिक परिदृष्य

यदि हम विगत तीन शताब्दियों पर विचार करें तो कई रोचक निष्कर्ष पा सकते हैं। यदि अठारहवीं सदी ऑस्ट्रिया और हंगरी के वर्चस्व की रही है तो उन्नीसवीं सदी ब्रिटेन और जर्मनी के वर्चस्व का साक्ष्य देती है। इसी तरह बीसवीं सदी अमेरिका एवं सोवियत संघ के वर्चस्व के रूप में विश्व नियति का निदर्शन करने वाली रही है। आज स्थिति यह है कि लगभग विश्व समुदाय दबी जुबान से ही सही, यह कहने लगा है कि इक्कीसवीं सदी भारत और चीन की होगी। इस सदी में इन दोनों देशों की तूती बोलेगी। इस भविष्यवाणी को चरितार्थ करने वाले ठोस कारण हैं। आज भारत और चीन विश्व की सबसे तीव्र गति से उभरने वाली अर्थव्यवस्थाओं में से हैं तथा विश्व स्तर पर इनकी स्वीकार्यता और महत्ता स्वत: बढ़ रही है। इन देशों के पास अकूत प्राकृतिक संपदा तथा युवतर मानव संसाधन है जिसके कारण ये भावी वैश्विक संरचना में उत्पादन के बड़े स्रोत बन सकते हैं। अपनी कार्य निपुणता तथा निवेश एवं उत्पादन के समीकरण की प्रबल संभावना को देखते हुए ही भारत और चीन को निकट भविष्य की विश्व शक्ति के रूप में देखा जाने लगा है।

जाहिर है कि जब किसी राष्ट्र को विश्व बिरादरी अपेक्षाकृत ज्यादा महत्त्व और स्वीकृति देती है तथा उसके प्रति अपनी निर्भरता में इजाफा पाती है तो उस राष्ट्र की तमाम चीजें स्वत: महत्त्वपूर्ण बन जाती हैं। ऐसी स्थिति में भारत की विकासमान अंतरराष्ट्रीय हैसियत हिन्दी के लिए वरदान-सदृश है। यह सच है कि वर्तमान वैश्विक परिवेश में भारत की बढती उपस्थिति हिन्दी की हैसियत का भी उन्नयन कर रही है। आज हिन्दी राष्ट्रभाषा की गंगा से विश्वभाषा का गंगासागर बनने की प्रक्रिया में है। आज विश्व स्तर पर उसकी स्वीकार्यता और व्याप्ति अनुभव की जा सकती है। जब हम हिन्दी को विश्वभाषा में रूपांतरित होते हुए देख रहे हैं और यथावसर उसे विश्वभाषा की संज्ञा प्रदान कर रहे हैं तब यह जरूरी हो जाता है कि हम सर्वप्रथम विश्वभाषा का स्वरप-विश्लेषण कर लें ।

भाषा के वैश्विक संदर्भ की विशेषताएँ-जब हम किसी भाषा के वैश्विक परिदृश्य पर विचार करते हैं तो हमें अनेक पक्षों पर गंभीर बात करनी होती है। आज हिन्दी वैश्विक परिदृश्य में अपनी भूमिका बखूबी निभाने के लिए सुसज्जित है।

आखिर, वे कौन सी विशेषताएँ हैं जो किसी भाषा को वैश्विक संदर्भ प्रदान करती हैं। सामान्यत: विश्व व्यवस्था को संचालित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने तथा अंतरराष्ट्रीय संबंधों में प्रयुक्त होने वाली भाषाएँ विश्वभाषा कहलाने की अधिकारिणी हैं परन्तु अध्ययन की सुविधा के लिए उसके कुछ ठोस निकष अथवा प्रतिमान बनाने होंगे। ऐसा करके हम हिन्दी के विश्व संदर्भ का वस्तुपरक विश्लेषण कर सकते हैं। संक्षेप में, विश्वभाषा के निम्नलिखित अभिलक्षण निर्मित किए जा सकते हैं:-

- उसके बोलने-जानने तथा चाहने वाले भारी तादाद में हों और वे विश्व के अनेक देशों में फैले हों।
- उस भाषा में साहित्य-सृजन की प्रदीर्घ परंपरा हो और प्राय: सभी विधाएँ वैविध्यपूर्ण एवं समृद्ध हों। उस भाषा में सृजित कम-से-कम एक विधा का साहित्य विश्वस्तरीय हो।
- उसकी शब्द-संपदा विपुल एवं विराट हो तथा वह विश्व की अन्यान्य बड़ी भाषाओं से विचार-विनिमय करते हुए एक-दूसरे को प्रेरित-प्रभावित करने में सक्षम हो।
- उसकी शाब्दी एवं आर्थी संरचना तथा लिपि सरल, सुबोध एवं वैज्ञानिक हो। उसका पठन-पाठन और लेखन सहज-संभाव्य हो। उसमें निरंतर परिष्कार और परिवर्तन की गुंजाइश हो।

- उसमें ज्ञान-विज्ञान के तमाम अनुशासनों में वाङ्मय सृजित एवं प्रकाशित हो तथा नए विषयों पर सामग्री तैयार करने की क्षमता हो।

- वह नवीनतम वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियों के साथ अपने-आपको पुरस्कृत एवं समायोजित करने की क्षमता से युक्त हो।

- वह अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक संदर्भों, सामाजिक संरचनाओं, सांस्कृतिक चिंताओं तथा आर्थिक विनिमय की संवाहक हो।उसमें इन सबको तथा विश्व मन की आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करने का माद्दा हो।

- वह जनसंचार माध्यमों में बड़े पैमाने पर देश-विदेश में प्रयुक्त हो रही हो।वैश्विक मीडिया में उसका प्रभावी हस्तक्षेप हो।

- उसका साहित्य अनुवाद के माध्यम से विश्व की दूसरी महत्त्वपूर्ण भाषाओं में पहुँच रहा हो। उसके पठन-पाठन तथा प्रसारण की सुविधा अनेक देशों में उपलब्ध हो।

- उसमें मानवीय और यांत्रिक अनुवाद की आधारभूत तथा विकसित सुविधा हो जिससे वह बहुभाषिक कम्प्यूटर की दुनिया में अपने समग्र सूचना स्रोत तथा प्रक्रिया सामग्री (सॉफ्टवेयर) के साथ उपलब्ध हो। साथ ही, वह इतनी समर्थ हो कि वर्तमान प्रौद्योगिकीय उपलब्धियों मसलन ई-मेल, ई-कॉमर्स, ई-बुक, इंटरनेट तथा एस. एम.एस. एवं वेब जगत में प्रभावपूर्ण ढंग से अपनी सक्रिय उपस्थिति का अहसास करा सके ।

- उसमें उच्चकोटि की पारिभाषिक शब्दावली हो तथा वह विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की नवीनतम आविष्कृतियों को अभिव्यक्त करते हुए मनुष्य की बदलती जरूरतों एवं आकांक्षाओं को वाणी देने में समर्थ हो।

- वह विश्व चेतना की संवाहिका हो। वह स्थानीय आग्रहों से मुक्त विश्व दृष्टि सम्पन्न कृतिकारों की भाषा हो, जो विश्वस्तरीय समस्याओं की समझ और उसके निराकरण का मार्ग जानते हों । उनके द्वारा सृजित साहित्य विश्व बंधुत्व, विश्व मैत्री एवं विश्व कल्याण की भावना से अनुप्राणित हो।

वैश्विक संदर्भ में हिन्दी की सामर्थ्य

जब हम उपर्युक्त प्रतिमानों पर हिन्दी का परीक्षण करते हैं तो पाते हैं कि वह न्यूनाधिक मात्रा में प्राय: सभी निष्कर्षों पर खरी उतरती है। आज वह विश्व के सभी महाद्वीपों तथा महत्त्वपूर्ण राष्ट्रों- जिनकी संख्या लगभग एक सौ चालीस है- में किसी न किसी रूप में प्रयुक्त होती है। वह विश्व के विराट फलक पर नवल चित्र के समान प्रकट हो रही है। आज वह बोलने वालों की संख्या के आधार पर चीनी के बाद विश्व की दूसरी सबसे बड़ी भाषा बन गई है। इस बात को सर्वप्रथम सन १९९९ में 'मशीन ट्रांसलेशन समिट' अर्थात् यांत्रिक अनुवाद नामक संगोष्ठी में टोकियो विश्वविद्यालय के प्रो. होजुमि तनाका ने भाषाई आँकडे पेश करके सिद्ध किया है। उनके द्वारा प्रस्तुत आँकडों के अनुसार विश्वभर में चीनी भाषा बोलने वालों का स्थान प्रथम और हिन्दी का द्वितीय है। अंग्रेजी तो तीसरे क्रमांक पर पहुँच गई है। इसी क्रम में कुछ ऐसे विद्वान अनुसंधित्सु भी सक्रिय हैं जो हिन्दी को चीनी के ऊपर अर्थात् प्रथम क्रमांक पर दिखाने के लिए प्रयत्नशील हैं। डॉ. जयन्ती प्रसाद नौटियाल ने भाषा शोध अध्ययन 2005 के हवाले से लिखा है कि, विश्व में हिन्दी जानने वालों की संख्या एक अरब दो करोड पच्चीस लाख दस हजार तीन सौ बावन (1,02,25,10,352) है जबकि चीनी बोलने वालों की संख्या केवल नब्बे करोड चार लाख छह हजार छह सौ चौदह (90,04,06,614) है। इस समय हिन्दी संपूर्ण विश्व की सर्वाधिक प्रयुक्त होने वाली भाषा है। आज संपूर्ण विश्व में हिन्दी 64 करोड़ लोगों की मातृभाषा, 24 करोड़ लोगों की दूसरी भाषा और 42 करोड़ लोगों की तीसरी, चौथी, पांचवीं अथवा विदेशी भाषा है। आज हिन्दी विश्व के 206 देशों में धड़ल्ले से प्रयुक्त हो रही है और उसके प्रयोक्ताओं की संख्या एक अरब तीस करोड़ तक पहुंच गयी है। हमारे देश के प्रशिक्षित पेशेवर लगातार विदेशों में अपनी सेवाएं देने के लिए जा रहे हैं और उनके साथ हिन्दी भी जा रही है। इसी तरह बहुराष्ट्रीय निगम बड़े पैमाने पर भारत में पूंजी निवेश कर रहे हैं। फलत: वे अपने लाभ के लिए ही सही हिन्दी का प्रयोग करने के लिए अभिशप्त हैं। चीन की भाषा मंदारिन के पिछड़ने का मुख्य कारण यह है कि अड़तीस प्रतिशत चीनी मंदारिन नहीं बोल पाते हैं जबकि हिन्दी की स्थिति इससे बेहतर है। केवल बाईस प्रतिशत भारतीय ही हिन्दी बोल अथवा समझ नहीं पाते हैं। चीन में 56 बोलियाँ अथवा उपभाषाएं हैं जो मंदारिन से एकदम भिन्न हैं। यह मान भी लिया जाय कि आँकडे झूठ बोलते हैं और उन पर आँख मूँदकर विश्वास नहीं किया जा सकता तो भी इतनी सच्चाई निर्विवाद है कि हिन्दी बोलने वालों की संख्या के आधार पर विश्व की दो सबसे बडी भाषाओं में से है। लेकिन वैज्ञानिकता का तकाजा यह भी है कि हम इस तथ्य को भी स्वीकार करें कि अंग्रेजी के प्रयोक्ता भी विश्व के उतने ही देशों में फैले हुए हैं। वह अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रशासनिक, व्यावसायिक तथा वैचारिक गतिविधियों को चलाने वाली सबसे प्रभावशाली भाषा बनी हुई है। चूंकि हिन्दी का संवेदनात्मक साहित्य उच्चकोटि का होते हुए भी ज्ञान का साहित्य अंग्रेजी के स्तर का नहीं है अत: निकट भविष्य में विश्व व्यवस्था परिचालन की दृष्टि से अंग्रेजी की उपादेयता एवं महत्त्व को कोई खतरा नहीं है। इस मोर्चे पर हिन्दी का बड़े ही सबल तरीके से उन्नयन करना होगा। उसके पक्ष में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आज अंग्रेजी के बराबर वह विश्व के सबसे ज्यादा देशों में व्यवहृत होती

है। उसने डिजिटल दुनिया में अंग्रेजी के एकाधिकार को समाप्त कर दिया है।

आने वाली पीढ़ी की भाषा-

वर्तमान उत्तर आधुनिक परिवेश में विशाल जनसंख्या भारत और चीन के साथ-साथ हिन्दी और चीनी के लिए भी फायदेमंद सिद्ध हो रही है। हमारे देश में 1980 के बाद 70 करोड से ज्यादा बच्चे पैदा हुए हैं। जो विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों तथा अंतरराष्ट्रीय शैक्षणिक संस्थानों में शिक्षित प्रशिक्षित हो रहे हैं। वे सन् 2025 तक विधिवत प्रशिक्षित पेशेवर के रूप में अपनी सेवाएँ देने के लिए विश्व के समक्ष उपलब्ध होंगे। दूसरी ओर जापान की साठ प्रतिशत से ज्यादा आबादी साठ साल पार करके बुढ़ापे की ओर बढ़ रही है। यही हाल आगामी पंद्रह सालों में अमेरिका और यूरोप का भी होने वाला है । ऐसी स्थिति में विश्व का सबसे तरुण मानव संसाधन होने के कारण भारतीय पेशेवरों की तमाम देशों में लगातार मांग बढ़ेगी। जाहिर है कि जब भारतीय पेशेवर भारी तादाद में दूसरे देशों में जाकर उत्पादन के स्रोत बनेंगे। वहाँ की व्यवस्था परिचालन का सशक्त पहिया बनेंगे तब उनके साथ हिन्दी भी जाएगी। ऐसी स्थिति में जहाँ भारत आर्थिक महाशक्ति बनने की प्रक्रिया में होगा वहाँ हिन्दी स्वत: विश्वमंच पर प्रभावी भूमिका का वहन करेगी। इस तरह यह माना जा सकता है कि हिन्दी आज जिस दायित्व बोध को लेकर संकल्पित है वह निकट भविष्य में उसे और भी बड़ी भूमिका का निर्वाह करने का अवसर प्रदान करेगा। हिन्दी जिस गति तथा आंतरिक ऊर्जा के साथ अग्रसर है उसे देखकर यही कहा जा सकता है कि सन् 2030 तक वह दुनिया की सबसे ज्यादा बोली व समझी जाने वाली भाषा बन जाएगी।आज विश्व का हर पांचवां व्यक्ति हिन्दी बोलने अथवा समझने में सक्षम है तो 2030 तक विश्व का हर छठा व्यक्ति हिन्दी बोलने अथवा समझने में सक्षम होगा।

समर्थ भाषा और वैज्ञानिक लिपि-

यदि हम इन आँकडों पर विश्वास करें तो संख्याबल के आधार पर हिन्दी विश्वभाषा है। हाँ, यह जरूर संभव है कि यह मातृभाषा न होकर दूसरी, तीसरी अथवा चौथी भाषा भी हो सकती है। हिन्दी में साहित्य-सृजन की परंपरा भी बारह सौ साल पुरानी है। वह 8वीं शताब्दी से लेकर वर्तमान 21वीं शताब्दी तक गंगा की अनाहत-अविरल धारा की भाँति प्रवाहमान है। उसका काव्य साहित्य तो संस्कृत के बाद विश्व के श्रेष्ठतम साहित्य की क्षमता रखता है। उसमें लिखित उपन्यास एवं समालोचना भी विश्वस्तरीय है। उसकी शब्द संपदा विपुल है। उसके पास पच्चीस लाख से ज्यादा शब्दों की सेना है। उसके पास विश्व की सबसे बडी कृषि विषयक शब्दावली है। उसने अन्यान्य भाषाओं के बहुप्रयुक्त शब्दों को उदारतापूर्वक ग्रहण किया है और जो शब्द अप्रचलित अथवा बदलते जीवन संदर्भों से दूर हो गए हैं उनका त्याग भी कर दिया है। आज हिन्दी में विश्व का महत्त्वपूर्ण साहित्य अनुसृजनात्मक लेखन के रूप में उपलब्ध है और उसके साहित्य का उत्तमांश भी विश्व की दूसरी भाषाओं में अनुवाद के माध्यम से जा रहा है।

जहाँ तक देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता का सवाल है तो वह सर्वमान्य है। देवनागरी में लिखी जाने वाली भाषाएँ उच्चारण पर आधारित हैं। हिन्दी की शाब्दी और आर्थी संरचना प्रयुक्तियों के आधार पर सरल व जटिल दोनों है। हिन्दी भाषा का अन्यतम वैशिष्ट्य यह है कि उसमें संस्कृत के उपसर्ग तथा प्रत्ययों के आधार पर शब्द बनाने की अभूतपूर्व क्षमता है। हिन्दी और देवनागरी दोनों ही पिछले कुछ दशकों में परिमार्जन व मानकीकरण की प्रक्रिया से गुजरी हैं जिससे उनकी संरचनात्मक जटिलता कम हुई है। हम जानते हैं कि विश्व मानव की बदलती चिंतनात्मकता तथा नवीन जीवन स्थितियों को व्यंजित करने की भरपूर क्षमता हिन्दी भाषा में है बशर्ते इस दिशा में अपेक्षित बौद्धिक तैयारी तथा सुनियोजित विशेषज्ञता हासिल की जाए। आखिर, उपग्रह चैनल हिन्दी में प्रसारित कार्यक्रमों के जरिए यही कर रहे हैं।

मीडिया और वेब पर हिन्दी-

यह सत्य है कि हिन्दी में अंग्रेजी के स्तर की विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर आधारित पुस्तकें नहीं हैं। उसमें ज्ञान विज्ञान से संबंधित विषयों पर उच्चस्तरीय सामग्री की दरकार है। विगत कुछ वर्षों से इस दिशा में उचित प्रयास हो रहे हैं। अभी हाल ही में महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा द्वारा हिन्दी माध्यम में एम.बी.ए. का पाठ्यक्रम आरंभ किया गया। इसी तरह 'इकोनॉमिक टाइम्स' तथा 'बिजनेस स्टैंडर्ड' जैसे अखबार हिन्दी में प्रकाशित होकर उसमें निहित संभावनाओं का उद्घोष कर रहे हैं। पिछले कई वर्षों में यह भी देखने में आया कि 'स्टार न्यूज' जैसे चैनल जो अंग्रेजी में आरंभ हुए थे वे विशुद्ध बाजारीय दबाव के चलते पूर्णत: हिन्दी चैनल में रूपांतरित हो गए। साथ ही, 'ई.एस.पी.एन' तथा 'स्टार स्पोर्ट्स' जैसे खेल चैनल भी हिन्दी में कमेंट्री देने लगे हैं। हिन्दी को वैश्विक संदर्भ देने में उपग्रह-चैनलों, विज्ञापन एजेंसियों, बहुराष्ट्रीय निगमों तथा यांत्रिक सुविधाओं का विशेष योगदान है। वह जनसंचार-माध्यमों की सबसे प्रिय एवं अनुकूल भाषा बनकर निखरी है।

आज विश्व में सबसे ज्यादा पढ़े जाने वाले समाचार पत्रों में आधे से अधिक हिन्दी के हैं। इसका आशय यही है कि पढ़ा-लिखा वर्ग भी हिन्दी के महत्त्व को समझ रहा है। वस्तुस्थिति यह है कि आज भारतीय उपमहाद्वीप ही नहीं बल्कि दक्षिण पूर्व एशिया,

मॉरीशस, चीन, जापान, कोरिया, मध्य एशिया, खाडी देशों, अफ्रीका, यूरोप, कनाडा तथा अमेरिका तक हिन्दी कार्यक्रम उपग्रह चैनलों के जरिए प्रसारित हो रहे हैं और भारी तादाद में उन्हें दर्शक भी मिल रहे हैं। आज मॉरीशस में हिन्दी सात चैनलों के माध्यम से धूम मचाए हुए है। विगत कुछ वर्षों में एफ.एम. रेडियो के विकास से हिन्दी कार्यक्रमों का नया श्रोता वर्ग पैदा हो गया है। हिन्दी अब नई प्रौद्योगिकी के रथ पर आरूढ होकर विश्वव्यापी बन रही है। उसे ई-मेल, ई-कॉमर्स, ई-बुक, इंटरनेट, एस.एम.एस. एवं वेब जगत में बड़ी सहजता से पाया जा सकता है। इंटरनेट जैसे वैश्विक माध्यम के कारण हिन्दी के अखबार एवं पत्रिकाएँ दूसरे देशों में भी विविध साइट्स पर उपलब्ध हैं। यहाँ तक कि स्वयं गूगल का सर्वेक्षण सिद्ध कर रहा है कि विगत दो वर्षों में सोशल मीडिया पर हिन्दी में प्रयुक्त होने वाली सामग्री में 94 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है जबकि अंग्रेजी में मात्र 19 प्रतिशत की । हमारे वर्तमान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी भी हिन्दी के वैश्विक राजदूत और सुपर ब्रांड बन गए हैं। संपूर्ण विश्व के अलग-अलग हिस्सों में उन्हें सुनने के लिए जिस तरह भारी भीड़ जमा होती है वह प्रकारांतर से हिंद और हिन्दी की बढ़ती शक्ति का उद्घोष भी है।

माइक्रोसॉफ्ट, गूगल, सन, याहू, आईबीएम तथा ओरेकल जैसी विश्वस्तरीय कंपनियाँ अत्यंत व्यापक बाजार और भारी मुनाफे को देखते हुए हिन्दी प्रयोग को बढ़ावा दे रही हैं। संक्षेप में, यह स्थापित सत्य है कि अंग्रेजी के दबाव के बावजूद हिन्दी बहुत ही तीव्र गति से विश्वमन के सुख-दु:ख, आशा-आकांक्षा की संवाहक बनने की दिशा में अग्रसर है। आज विश्व के दर्जनों देशों में हिन्दी की पत्रिकाएँ निकल रही हैं तथा अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी, जापान, ऑस्ट्रिया जैसे विकसित देशों में हिन्दी के कृति रचनाकार अपनी सृजनात्मकता द्वारा उदारतापूर्वक विश्व मन का संस्पर्श कर रहे हैं। हिन्दी के शब्दकोश तथा विश्वकोश निर्मित करने में भी विदेशी विद्वान सहायता कर रहे हैं।

राजनीतिक व सामाजिक क्षेत्र में हिन्दी

जहाँ तक अंतरराष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक विनिमय के क्षेत्र में हिन्दी के अनुप्रयोग का सवाल है तो यह देखने में आया है कि हमारे देश के नेताओं ने समय-समय पर अंतरराष्ट्रीय मंचों पर हिन्दी में भाषण देकर उसकी उपयोगिता का उद्घोष किया है। यदि अटल बिहारी वाजपेयी तथा पी.वी.नरसिंह राव द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी में दिया गया वक्तव्य स्मरणीय है तो श्रीमती इंदिरा गाँधी द्वारा राष्ट्र मंडल देशों की बैठक तथा चन्द्रशेखर द्वारा दक्षेस शिखर सम्मेलन के अवसर पर हिन्दी में दिए गए भाषण भी उल्लेखनीय हैं। यह भी सर्वविदित है कि यूनेस्को के बहुत सारे कार्य हिन्दी में सम्पन्न होते हैं। इसके अलावा अब तक विश्व हिन्दी सम्मेलन मॉरीशस, त्रिनिदाद, लंदन, सुरीनाम तथा न्यूयार्क जैसे स्थलों पर सम्पन्न हो चुके हैं जिनके माध्यम से विश्व स्तर पर हिन्दी का स्वर सम्भार महसूस किया गया। अभी आठवें विश्व हिन्दी सम्मेलन न्यूयॉर्क में संयुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव बान की मून ने दो-चार वाक्य हिन्दी में बोलकर उपस्थित विश्व हिन्दी समुदाय की खूब वाह-वाही लूटी। हिन्दी को वैश्विक संदर्भ और व्याप्ति प्रदान करने में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा विदेशों में स्थापित भारतीय विद्यापीठों की केन्द्रीय भूमिका रही है जो विश्व के अनेक महत्त्वपूर्ण राष्ट्रों में फैली हुई है। इन विश्वविद्यालयों में शोध स्तर पर हिन्दी अध्ययन-अध्यापन की सुविधा है जिसका सर्वाधिक लाभ विदेशी अध्येताओं को मिल रहा है।

विदेशों में हिन्दी-

हिन्दी विश्व के प्राय: सभी महत्त्वपूर्ण देशों के विश्व विद्यालयों में अध्ययन-अध्यापन में भागीदार है। अकेले अमेरिका में ही लगभग एक सौ पचास से ज्यादा शैक्षणिक संस्थानों में हिन्दी का पठन-पाठन हो रहा है। आज जब २१वीं सदी में वैश्वीकरण के दबावों के चलते विश्व की तमाम संस्कृतियाँ एवं भाषाएँ आदान -प्रदान व संवाद की प्रक्रिया से गुजर रही हैं तो हिन्दी इस दिशा में विश्व मनुष्यता को निकट लाने के लिए सेतु का कार्य कर सकती है। उसके पास पहले से ही बहु सांस्कृतिक परिवेश में सक्रिय रहने का अनुभव है जिससे वह अपेक्षाकृत ज्यादा रचनात्मक भूमिका निभाने की स्थिति में है। हिन्दी सिनेमा अपने संवादों एवं गीतों के कारण विश्व स्तर पर लोकप्रिय हुए हैं। उसने सदा-सर्वदा से विश्वमन को जोड़ा है। हिन्दी की मूल प्रकृति लोकतांत्रिक तथा रागात्मक संबंध निर्मित करने की रही है। वह विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र की ही राष्ट्रभाषा नहीं है बल्कि पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, बांग्लादेश, फिजी, मॉरीशस, गुयाना, त्रिनिदाद तथा सुरीनाम जैसे देशों की सम्पर्क भाषा भी है। वह भारतीय उपमहाद्वीप के लोगों के बीच खाड़ी देशों, मध्य एशियाई देशों, रूस, समूचे यूरोप, कनाडा, अमेरिका तथा मैक्सिको जैसे प्रभावशाली देशों में रागात्मक जुड़ाव तथा विचार-विनिमय का सबल माध्यम है। अभी पिछले वर्ष संयुक्त अरब अमीरात ने हिन्दी को तीसरी आधिकारिक भाषा का दर्जा दिया है और वहाँ के न्यायालयों में भी उसका प्रयोग आरंभ हो गया है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने पिछले साल हिन्दी में अपना ट्विटर हैंडल तथा वेबसाइट का शुभारंभ कर दिया है। साथ ही, हर शुक्रवार को एक घंटे का रेडियो कार्यक्रम भी आरंभ किया है।

यदि निकट भविष्य में बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था निर्मित होती है और संयुक्त राष्ट्र संघ का लोकतांत्रिक ढंग से विस्तार करते हुए

शेष पृष्ठ संख्या 24 पर

चमत्कार लोक भाषाओं का

संथाली भाषा और उसका साहित्य

राम कृष्ण वाजपेई

मूलत: संताड़ी भाषा बोलने वालों को संताड़ी कहा जाता है। लेकिन जब दूसरे भाषा भाषी लोग इस संताड़ी शब्द को अपनी क्षेत्रीय भाषाओं में उच्चारित करते हैं तो उच्चारण भिन्नता के परिणाम स्वरूप 'संथाली, संताली, संवतली, संवतरी' आदि नामों से संबोधित किया जाता है। जबकि संथाली, संताली, संवतली, संवतरी जैसा कोई शब्द ही नहीं है। इस तरह मूल शब्द केवल 'संताड़ी' है, जिसे उच्चारण के अभाव में देवनागरी में 'संथाली' और रोमन में संताली लिखा जाता है। आगे हम इसे संथाली ही कहेंगे।

संथाली भाषा जो कि ज्ञात इतिहास के अनुसार 15वीं सदी से अस्तित्व में आई । कई सौ साल तक लिपि के अभाव में सिर्फ बोलचाल की भाषा रही । इसका मूल स्वरूप व्याकरण के अभाव में बोली का ही रहा। हालांकि इस भाषा में साहित्य सृजन का कार्य हुआ। लेकिन अगर हम संथाली को भाषा का रूप देने पर चर्चा कर रहे हैं तो पंडित रघुनाथ मुर्मू का नाम लिए संथाली भाषा पर चर्चा करना असंभव है। महान भाषा वैज्ञानिक पंडित रघुनाथ मुर्मू न होते तो संथाली कभी भाषा का दर्जा हासिल नहीं कर सकती थी। ये पंडित रघुनाथ मुर्मू का ही योगदान था कि उन्होंने अपने लाघनीय प्रयत्नों से संथाली साहित्य को देखने और अध्ययन करने के बाद संथाली को एक लिपि दी। 1905 में जन्म लेने वाले पंडित मुर्मू ने 1925 में मात्र 30 वर्ष की उम्र में संथाली भाषा को उसकी ओल चिकी लिपि दी।

लेकिन संथाली भाषा को संवैधानिक मान्यता में 78 साल का लंबा वक्त लगा। भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची जो कि भारत की भाषाओं से संबंधित है। इस अनुसूची में शामिल २२ भारतीय भाषाओं में संथाली भी एक भाषा अपनी लिपि आने के 78 साल बाद स्थान बना सकी। जबकि इन 22 भाषाओं में कोंकणी, मणिपुरी और नेपाली भाषा को काफी पहले 1992 में जोड़ लिया गया था। और संथाली को अब से तकरीबन 17 वर्ष पूर्व 2003 में बोड़ो, डोगरी, मैथिली भाषाओं के साथ शामिल किया गया।

एक परिचय

संताड़ी भाषा बोलने वाले वक्ता खेरवाड़ समुदाय से आते हैं, जो अपने को 'होड़' (मनुष्य) अथवा 'होड़ होपोन' (मनुष्य की सन्तान) कहते हैं। यहाँ खेरवाड़ और खरवार से लोगों को धोखा हो सकता है लेकिन यहाँ प्रयुक्त 'खेरवाड़' और 'खरवार' शब्द और अर्थ में अंतर है। खेरवाड़ एक समुदाय है, जबकि खरवार इसी की उपजाति है। संताड़ी भाषा भाषी लोग भारत में अधिकांश झारखंड, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, बिहार, असम, त्रिपुरा, मेघालय, मणिपुर, सिक्किम, मिजोरम राज्यों तथा विदेशों में बहुत कम संख्या में हैं। हालांकि इनका फैलाव व्यापक है। चीन, न्यूजीलैंड, नेपाल, भूटान, बांग्लादेश, जावा, सुमात्रा आदि देशों में संताड़ी बोलने वाले मिल जाएंगे।

संताड़ी भाषा भाषी लोग भारत की प्राचीनतम जनजातियों में से एक है। किन्तु वर्तमान में इन्हे झारखंडी (जाहेर खोंडी) के रूप में जाना जाता है। झारखंडी का अर्थ झारखंड में निवास करने वाले से नहीं है बल्कि 'जाहेर' (सारना स्थल) के 'खोंड' (वेदी) में पूजा करने वाले लोगों से है, जो प्रकृति को विधाता मानते हैं। अर्थात ये प्रकृति के पुजारी-जल, जंगल और जमीन से जुड़े हुए लोग हैं। ये लोग अपने ग्रामीण देवताओं 'मारांग बुरु' और 'जाहेर आयो' (माता प्रकृति) की उपासना करते हैं।

संथाली भाषा 'ऑस्ट्रो-ऑस्टिक' परिवार की एक शाखा से जुड़ी भाषा है। 'मानव शास्त्री' इन्हें प्रोटो आस्ट्रेलायड से संबन्ध रखने वाला समूह मानते हैं। लेकिन इसका कोई सटीक प्रमाण नहीं है। वास्तव में खेरवाड़ समुदाय (संताड़ी, हो, मुंडा, कुरुख, बिरहोड़, खड़िया, असुर, लोहरा, सावरा, भूमिज, महली रेमो, बेधिया आदि) के बारे में अभी और शोध किये जाने की जरूरत है।

मुंडा परिवार की प्रमुख भाषा

संथाली मुंडा भाषा परिवार की प्रमुख भाषा है। यह असम, झारखंड, उड़ीसा, छत्तीसगढ, बिहार, त्रिपुरा तथा बंगाल में बोली जाती है। संथाली, हो और मुंडारी भाषाएँ आस्ट्रो-एशियाई भाषा परिवार में मुंडा शाखा में आती हैं।

संताल भारत, बांग्लादेश, नेपाल और भूटान में लगभग ६० लाख लोगों से बोली जाती है। पं. रघुनाथ मुर्मू द्वारा दी गई 'ओल चिकी' लिपि के पहले संथाली को अंग्रेजी काल में रोमन में लिखा जाता था। भारत के उत्तर झारखण्ड के कुछ हिस्सों में संथाली लिखने के लिए देवनागरी लिपि का प्रयोग होता है। एक बात और है कि संथाली भाषा का प्रयोग झारखण्ड, असम, बिहार, उड़ीसा, त्रिपुरा, और पश्चिम बंगाल राज्यों में होने के बावजूद संथालियों का साक्षरता प्रतिशत मात्र 10 से 30 प्रतिशत होने के कारण इसकी अपनी 'ओल चिकी' वर्णमाला के जानकार भी कम हैं।

ऐसा लगता है कि संथाली को उसकी अपनी लिपि देने वाले पंडित रघुनाथ मुरमू की सोच यह रही होगी कि अगर एक ही समूह अलग-अलग क्षेत्रीय स्क्रिप्ट या लिपि का प्रयोग करेगा तो फिर संथाली समाज की उन्नति में बाधा आएगी। यह बात सही भी थी। ओल चिकी स्क्रिप्ट का इस्तेमाल अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए आज के दौर में बढ़ा है। बहुतायत में लोग इसे पसंद करने लगे हैं। इसका सबूत यह है कि ऑनलाइन संताली विकीपीडिया, जो हाल ही में 2 अगस्त 2018 (http://sat.wikipedia.org) में ऑनलाइन आया था। अभी इसमें कम से कम 800 से भी अधिक आर्टिकल्स हो चुके हैं जो की पूरी तरह से ओल चिकी लिपि में ही लिखे गये हैं।

कुछ लोग ओल चिकी लिपि का विरोध यह कहते हुए कर रहे हैं कि इससे आदिवासियों के विकास में बाधा आएगी लेकिन अगर निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल को देखें तो ऐसा नहीं है। जरूरत है आदिवासियों को पढ़ाई के क्षेत्र में विकास के लिए प्रेरित किया जाए।

उपन्यास बिदु चंदन में पं. रघुनाथ मुर्मू ने स्पष्ट रूप से वर्णित किया है कि कैसे देवता बिडू और देवता चंदन जो पृथ्वी पर मानव के रूप में दिखाई देते हैं, ने स्वाभाविक रूप से ओल चिकी लिपि का आविष्कार किया था ताकि उनके साथ संवाद स्थापित हो सके। लिखित संथाली का उपयोग करते हुए उन्होंने 150 से अधिक पुस्तकें लिखीं, जैसे कि व्याकरण, उपन्यास, नाटक, कविता और संथाली में विषयों की एक विस्तृत श्रेणी को कवर किया, जिसमें सांलक समुदाय को सांस्कृतिक रूप से उन्नयन के लिए अपने व्यापक कार्यक्रम के एक हिस्से के रूप में ओल चिकी का उपयोग किया गया। 'दरेज धन', 'सिद्धु-कान्हू', 'बिदु चंदन' और 'खरगोश बीर' उनके कामों में से सबसे प्रशंसित हैं।

पश्चिम बंगाल और उड़ीसा सरकार के अलावा, उड़ीसा साहित्य अकादमी सहित कई अन्य संगठनों ने पं. रघुनाथ मुर्मू को विभिन्न तरीकों से सम्मानित किया और रांची विश्वविद्यालय द्वारा डीलिट की उपाधि से उन्हें सम्मानित किया गया। रघुनाथ मुर्मू ने ओल चिकी में ही अपने नाटकों की रचना की, तब से आज तक वे एक बड़े सांस्कृतिक नेता और संथाली सामाजिक-सांस्कृतिक एकता के प्रतीक हैं। उन्होंने 1977 में झाड़ग्राम के बेताकुन्दरीडाही ग्राम में एक संथाली विश्वविद्यालय का शिलान्यास भी किया था। मयूरभंज आदिवासी महासभा ने उन्हें गुरु गोमके (महान शिक्षक) की उपाधि प्रदान की।

जुलियस तिग्गा ने उन्हें महान अविष्कारक एवं नाटककार कहा और जयपाल सिंह मुण्डा ने उन्हें वैज्ञानिक और पंडित कहा। चारूलाल मुखर्जी ने उन्हें संतालियों के धर्मिक नेता कह कर संबोधित किया तथा प्रो. मार्टिन उराँव ने अपनी पुस्तक 'दी संताल - ए ट्राईब इन सर्च ऑफ दी ग्रेट ट्रेडिशन' में ओल चिकी की प्रशंसा करते हुए उन्हें संथालियों का महान गुरु कह कर संबोधित किया। गुरु गोमके ने भाषा के माध्यम से सांस्कृतिक एकता के लिए लिपि के द्वारा जो आंदोलन चलाया वह ऐतिहासिक है। उन्होंने कहा - 'अगर आप अपनी भाषा-संस्कृति, लिपि और धर्म भूल जायेंगे तो आपका अस्तित्व भी खत्म हो जाएगा !'

अगर आदिवासी या दलित संस्कृति के विकास के रूप में संथाली साहित्य को देखते हैं तो इस कड़ी में एलिस एक्का का नाम उल्लेखनीय है जो कि हिन्दी कथा-साहित्य में भारत की पहली महिला आदिवासी कहानीकार हैं। निसंदेह हिन्दी की पहली दलित कहानी लिखने का श्रेय भी एलिस एक्का को जाता है। मुंडा लोगों द्वारा बोली ऑस्ट्रोसीएटिक भाषा परिवार की भाषा मुंडा है और संथाली बारीकी से मुंडा भाषा परिवार से संबंधित है। मुंडारी मुख्य रूप में पूर्व भारत, बांग्लादेश, नेपाल और मुंडा आदिवासी लोगों द्वारा बोली जाती है। 'मुंडारी बानी', एक स्क्रिप्ट लिखने के लिए मुंडारी भाषा रोहिदास सिंह नाग द्वारा आविष्कार किया गया था। .

संथाली साहित्य आदिवासी, गैर-आदिवासी साहित्य की अध्ययन परंपरा को विभाजित नहीं करता है। चूंकि संथालियों का जीवनदर्शन किसी भी विभाजन के पक्ष में नहीं है, उनके समाज में समरूपता और समानता है, इसलिए उनका साहित्य भी विभाजित नहीं है। वे अपने साहित्य को 'ऑरेचर' अर्थात् ऑरल+लिटरेचर कहते हैं। उनका कहना है कि आज का लिखित साहित्य भी उनकी वाचिक यानी पुरखा साहित्य की परंपरा का ही साहित्य है। इसलिए संथाली समृद्ध भाषा है और इसका भविष्य उज्ज्वल है।

मोटे तौर पर कुँड़ुख, मुंडारी, संथाली, खड़िया और हो; ये पाँच जनजातीय भाषाएँ आपस में भाई और बहनों के समान हैं, क्योंकि उपरोक्त 5 भाषाओं को बोलने वाले सैंकड़ों वर्षों से एक साथ रहते आए हैं।

अंत में एक बात- वर्तमान समय में ऊपर वर्णित पाँच जनजातीय भाषाओं में कुँड़ुख भाषा की स्थिति सबसे दयनीय है क्योंकि उराँव समुदाय के लोग अपनी मातृभाषा कुँड़ुख को लगातार तिलांजलि देते हुए अपनी बोलचाल की भाषा में हिन्दी को प्राथमिकता दे रहे हैं। थोड़ा बहुत जो कुँड़ुख बोलते हैं उनमें से अधिकतर लोग 50 वर्ष की उम्र पार कर चुके हैं या सुदूर देहातों में रहते हैं। नतीजतन शहरी क्षेत्र हो या ग्रामीण अंचल कुँड़ुख बोलने वालों की संख्या बेतहाशा घट रही है। यह एक खतरे का संकेत है और यह भाषा विलुप्ति की ओर बढ़ रही है।

चमत्कार लोक भाषाओं का

संथाल सांस्कृतिक विविधता

डॉ. रेखा

संथाल जनजाति :- भारत के अनुसूचित जनजातियों के लोग इस देश के आदिवासी या देशी लोग हैं। यह क्रमशः पश्चिम, उत्तर पश्चिम और उत्तर पूर्व से आने वाले द्रविडों ने भारतीय आर्यों और मंगोलों से अपनी रक्षा नहीं कर पाने के कारण धीरे-धीरे पीछे हटने के लिए बाध्य हो गए। इन्हें घने जंगलों में शरण लेने के लिए बाध्य होना पड़ा। जहाँ आज भी वह बड़ी संख्या में निवास करते हैं। इनमें से जो मैदानी क्षेत्रों में छूट गए थे, वे धीरे-धीरे बाहर से आने वाले परिवर्तनों के कारण लुप्त हो गए।

जनजातियों की विशेषताएँ :-

- यह जनजाति भौगोलिक प्रदेश संथाल या छोटानागपुर सब जगह से दूर एकांत जीवन व्यतीत करती हैं। इनकी झोपड़ियां एक दूसरे से दूर 8-10 के झुंड में पहाड़ों पर होते हैं।
- यह अपने आप को एक अर्द्ध-राष्ट्रीय इकाई का एक समूह मानती है । जिनके अपने विश्वास, रीति-रिवाज, नीति, आचार-विचार हैं। जो ऐसे प्राचीन धर्म को मानते हैं जिसे, जीववाद कहा जाता है। इनके विचार में ईश्वर एक है, पर देवता अनेक और यह आत्माओं में विश्वास करते हैं। जो पौधे, पत्थर, नदी, पहाड़, वन, प्रकृति तथा भूत-प्रेत में निवास करती हैं।
- यह पुराने ढंग की आर्थिक क्रियाओं द्वारा जीवनयापन करते हैं। जैसे शिकार करना, प्राचीन ढंग से सरकती खेती करना, वनों पर निर्भर रहना, कंदमूल एकत्रित करना।
- जो जनजातियाँ आंतरिक भागों में रहती हैं आज भी प्राय नग्न या अर्धनग्न अवस्था में रहती हैं। बालों में पक्षियों के पंख लगाना, मुंह पर गुदना-गुदाना, सफेद या लाल रंग की आकृतियां बनाना, गले में लकड़ी-कांच के पणियों की माला, बाँस के आभूषण, पाँव में पीतल या चाँदी के गहने पहनना।
- अधिकतर मांसाहारी होते हैं।
- सांस्कृतिक दृष्टि से जनजातियाँ एक ही भाषा बोलती हैं। जिनका संबंध ऑस्ट्रो एशियाटिक, द्रविडियन आदिवासी, चीनी-तिब्बती परिवार से है।
- यह साधारण खानाबदोश जीवनयापन करते हैं।

सांस्कृतिक आयाम :-

संस्कृति मनुष्य के रहने के एक विशेष प्रकार के तरीके का नाम है। किसी समुदाय विशेष के तौर-तरीके एक तरह के हैं, तो दूसरे के किसी दूसरे तरह का। मानव समूह के जीवन के विभिन्न प्रकारों को उनकी संस्कृति कहते हैं। टॉयलर के अनुसार, संस्कृति वह समग्र जटिलता है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आचार-विचार, कानून और ऐसी अन्य क्षमताओं एवं आदतों का समावेश है। जिसे मनुष्य समाज का एक सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है।

भाषा :-

संथाली ऑस्ट्रोएशियाटिक परिवार की भाषा है। यह बंगाल, झारखंड में बोली जाती है। इसकी लिपि ओलचिकी है। संथाल प्राय द्विभाषी है। जहाँ कहीं भी रहते हैं अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त क्षेत्रीय भाषाओं को भी अपना रखा है, जिससे संवाद प्रक्रिया अबाध गति से आगे बढ़ती रहें। वर्तमान में यह भाषा संविधान की 22 भाषाओं में स्थान प्राप्त कर चुकी है। इसका लाभ यह हुआ है कि अब संथाली भाषा में विश्वविद्यालयी शिक्षा और साहित्य की रचना भी होने लगी है।

धर्म :-

धर्म शब्द किसी संस्कृति विशेष के विश्वासों और क्रियाकलापों की व्याख्या करते हुए मनुष्य और उसके परिवेश की व्याख्या करता है। धर्म एक समूह विशेष के सदस्यों को एकता प्रदान करता है और सामाजिक व्यवस्था में पारस्परिक व्यवस्था को स्पष्ट करता है। वे अपने आप को हिंदू मानते हैं। सांस्कृतिक आदान-प्रदान के कारण वे देवी, देवताओं यथा काली, दुर्गा, शिव का पूजन करने लगे हैं। यद्यपि इन जनजातियों के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में उन्नत धार्मिक विचारों का समावेश हुआ है। वे अपने बोंगा धर्म के प्रति भी अधिक सचेत दिखाई देते हैं। अपने जीवन में धार्मिक विश्वास में जादू, टोने को विशेष महत्व देते हैं। यह मानते हैं कि कुछ लोग बोंगा को रिझाकर अनिष्ट करवाते हैं इसलिए बोंगा को प्रसन्न रखना चाहिए। विश्वास के अनुसार संथाल जाति के अनेक बोंगांव में 6 अति महत्वपूर्ण है। इनमें मरांग बुरु, मोरे को, दुरुको, जहर जरा, गोसाथ जरा, परगना बोंगा और मांझी बोंगा। इनमें से पाँच पवित्र झाड़ी कुंज (जहेरथान) में रहते हैं और एक मांझी बोंगा गांव में स्थित मांझी थान में रहता है।

रीति-रिवाज, मान्यताएँ एवं प्रथाएँ :-

लोक रीतियों में स्थाई स्वरूप को ही प्रथा का नाम दिया जाता है। लोक रीति सामाजिक विरासत का फल है। जिसे लंबे समय तक अपनाया जाता है तो प्रथा का रूप धारण कर लेते हैं। अनुभव के द्वारा इसमें स्थायित्व आता है। व्यक्ति तथा समाज जिन नियमों को अपने हितार्थ अपनी पीढ़ी तक सीमित रखते हैं, सामाजिक व्यवहार

कहलाता है। परन्तु जब यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलने लगता है तो इसे सामाजिक रीति-रिवाज के रूप में माना जाने लगता है। संथाल जनजाति के लोग सामान्यत इस विश्वास के होते हैं कि प्रथाओं का आरंभ हमारे पूर्वजों के द्वारा किया गया था और लंबे समय तक पूर्वजों ने एक विशेष पद्धति को जिंदा रखा है तो उसे तोड़ना अनिष्टकारी होगा और नैतिकता के आधार पर भी अनुचित है। प्रथाएं लंबे समय से अपनी उपयोगिता प्रमाणित करते हुए आई हैं तो लोग नया कार्य करने से डरते हैं कि कहीं परिवर्तन करके कार्य करने में वह हानिकारक साबित ना हो। परंतु यदि सभ्यता का ह्रास होने लगे तथा प्रथाएं समाज को उन्नतिशील बनाने में बाधा डालने लगे तो आवश्यक है कि सबकी भलाई को देखते हुए कुछ परिवर्तन स्वीकार किए जाएं।

संथाल परंपराएँ :-

१) विवाह प्रथा :- विवाह प्रथा का किसी भी समाज में बहुत बड़ा महत्व होता है। क्योंकि वह परिवार और समाज का बीज अपने आप में संजोए रहता है। संथाल जनजाति में विवाह की प्रकृति उसके निषेधों का यथासंभव अध्ययन आवश्यक है। संथाल जनजातिय जीवन में विवाह को बापला के नाम से जाना जाता है। इसमें एकाकी विवाह का ही प्रचलन है बहु विवाह सीमित है। संथाल जनजाति का नियम है कि वे केवल अपनी जाति में ही विवाह कर सकते हैं। लेकिन स्वयं और माता-पिता के गोत्र को छोड़ना पड़ता है। वयस्क विवाह में विश्वास रखते हैं, लड़की 18 लड़का 22 का हो। लड़की की शादी उसके मनपसंद से की जाती है। इसके अतिरिक्त सशर्त विवाह पूर्व यौन संबंधों को भी सहमति प्राप्त है कि लड़का-लड़की विवाह करने को मना करें तो दंड का भागी होगा। दूसरा विवाह तभी कर सकते हैं, जब एक भाई की मृत्यु हो जाए या पत्नी बांझ हो लेकिन पत्नी की राय लेना जरूरी है। संथाल जनजाति में निम्न विवाह प्रचलित है:-

- बाप्ला या किरिंग :- परिवार बिचौलिए के माध्यम से मिलते हैं। लड़की का पिता बहू के लिए कीमत(पण) अदा करता है।

- धरड़ी जेवाई :- लड़की शारीरिक अक्षमत, कुरूप हो तब पिता वर को आर्थिक सहायता का वचन देता है। लड़का कुछ दिन ससुर की सेवा कर एक जोड़ी बैल, कृषि उपकरण, क्षमता अनुसार धन प्राप्त करता है।

- इतूत (टानकर) :- लड़का-लड़की मेले, हाट में बन ठनकर जाते हैं। लड़का विवाह करना चाहता हो और लड़की ना करना चाहे तो लड़का उसकी मांग में सिंदूर, मिट्टी भरकर तेज भागने की कोशिश करता है। यदि वधू पक्ष उसे पकड़ ले तो विवाह नहीं होता। यदि वर पक्ष मजबूत हो तो वह लड़की को अपने घर ले जाता है। अगले दिन लड़की का पिता योग मांझी को लेकर आता है और मांझी लड़की को बुलाकर उसकी मर्जी पूछता है अगर लड़की तैयार नहीं होती तो लड़के पर आर्थिक दंड लगाया जाता है। लेकिन अगर लड़की राजी हो तो वधू पक्ष को उचित मूल्य चुकाया जाता है। अपने होने वाले पति के घर रह जाती है।

- नीर बोलाक :- नीर का अर्थ है छोड़ना, बोलाक का अर्थ है प्रवेश करना। जब युवती किसी युवक से विवाह करने में असमर्थ हो तो सिर पर पोचानी से भरा घड़ा लेकर उसके घर में प्रवेश कर जाती है और वहीं रहने का हठ करती है। लड़के वाले चाहे तो उसे निकाल सकते हैं लेकिन नैतिकता के कारण ऐसा नहीं करते। लड़के की मां उसे मिर्ची का धुआं देती है, अगर वह भाग जाती है तो विवाह नहीं होता और अगर वह सह लेती है तो विवाह हो जाता है।

- सांगा विधवा :- विधवा विवाह ऐसी स्थिति में दुल्हन की मानक राशि आधी हो जाती है। संथालों को लगता है कि ऐसी स्त्रियां उधार ली जाने वाली वस्तुओं की तरह है जिसे अगले जन्म में लौटाना पड़ेगा। उनकी मान्यता के अनुसार दूसरा पति एक जन्म तक ही रहता है।

- किरिंग जेवाई :- इस विवाह का आश्रय तब लिया जाता है, जब युवती अपने ही गोत्र के किसी पुरुष से गर्भवती हो जाती है। तो युवक को दंड स्वरूप गर्भवती स्त्री को पति खरीद कर देना पड़ता है और जो पुरुष पति बनता है उसे गाय, दान के निश्चित मात्रा, कृषि उपकरण दिए जाते हैं।

- गोलाट विवाह :- जिन परिवारों में लड़का और लड़की दोनों विवाह योग्य हो तो संथाल समाज में एक परिवार के लड़के का विवाह दूसरे परिवार की लड़की से और दूसरे परिवार के लड़के का विवाह पहले परिवार की लड़की से हो जाता है। इसमें पण की बात समाप्त हो जाती है।

विवाह के लिए वयस्क आयु के ही युवक-युवती होते हैं। विवाह समारोह में बहुत अधिक भीड़ नहीं लगाते। वर और वधु पक्ष आपसी सहमति से आयोजन संपन्न करते है।

१) युवक और युवती का समान महत्व :- संथाल विवाह की सभी प्रचलित तिथियों और प्रावधानों में पुरुष और स्त्री की इच्छाओं को समाज महत्व देता है। स्त्री जाति के हितों को कोई नुकसान नहीं पहुँचता। विवाह उपरांत भी दोनों की सलाह का समान महत्व रहता है। वैवाहिक निर्णय में गाँव के मांझी की उपस्थिति व्यापक उपयोगी होती है। वे संथाल जो शिक्षित हो चुके हैं वे अंतरजातीय विवाह को भी स्वीकार करने लगे हैं। हालांकि वह संथाल समाज में दंड के भागी होते हैं।

२) उत्तराधिकार नियम :- संथाल परिवार में पिता के मरने के बाद पुत्रों को बराबर का हिस्सा मिलता है। पुत्रियों का इसमें कोई हिस्सा नहीं होता। यदि कोई पुत्र ना हो तो संपत्ति पुत्री को मिल जाती है। माँ के मरने के बाद उसकी व्यक्तिगत चीजें, आभूषण और कपड़े आदि उसके पुत्री और नंनदों में बाँट दिए जाते हैं। संथाल जिसकी कोई संतान नहीं मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तो उसकी विधवा को एक बछड़ा, 10-12 मन धान और कपड़े देते हुए माता-पिता के घर पहुँचा देते हैं। कुछ विशेष स्थितियों में पति के छोटे भाई से विवाह के उदाहरण भी मिलते हैं। यदि विधवा स्त्री अपने बच्चों का विवाह करने के बाद विवाह करना चाहे तो उसे अपने पति की संपत्ति ससुर को सौंपनी पड़ती है।

३) संथाल के विविध संस्कार :-

● **नाश्ता :-** संथाल जनजाति का पहला संस्कार जिन्हें वे मानते हैं नाश्ता कहलाता है। यह किसी बच्चे के जन्म के तीसरे या पाँचवें दिन संपन्न किया जाता है। इसे उत्सव के रूप में मनाते हैं। इसका उद्देश्य बच्चे का नामकरण पिता के द्वारा किया जाता है। प्रथम नाम पुत्र के दादा पर और पुत्री का दादी पर ही होता है। दाई इसके बाद उपस्थित लोगों के वक्ष पर आटे का गोल लगाकर बच्चे का नाम दोहराती है। फिर नीम की पत्ती के साथ उबले चावल का भोग पहले देवताओं को लगाकर फिर उपस्थित लोगों को खिलाया जाता है।

● **शेखी :-** इस उत्सव को जब संथाल बच्चा पाँच-छह वर्ष का होता है तो संपन्न किया जाता है। पुत्र हो तो उसके हाथ की कलाई के कुछ ऊपर दो गोल निशान बनाए जाते हैं। जिसके लिए पुराने वस्त्र का टुकड़ा जलाकर कलाई पर रखकर सुलगने देते हैं जब तक वह घाव नहीं बन जाता। पुत्री के भुजा एवं छाती पर गोदना गोदवाया जाता है। शादी के बाद दूसरी भुजा पर भी गोदना बनवाने की प्रथा है। परंतु गोदने से पहले स्त्री की कोई संतान मर जाए तो वह दूसरी भुजा पर गोदना नहीं बनवाते, इसके पीछे उद्देश्य यह है कि मरने के बाद बच्चा अपनी माँ को ना पहचान सके।

● **काको छठियर विनती :-** किशोरावस्था के साथ-साथ आठ 10 वर्ष की आयु में संथाल जाति में प्रवेश करने के लिए उत्सव द्वारा मान्यता प्राप्त कर लेता है। इसके बिना अपनी जाति के पूजा-पाठ या बलि में शामिल होने का उस बच्चे को अधिकार नहीं होता। लड़कियों के लिए भी यह नियम लागू होता है वह परिवार के अंदर के थान या बेदी को साफ नहीं कर सकती ना ही गाय के गोबर से लीप सकती है। बलि के पशु को पकाना और प्रसाद पाना भी उसके लिए वर्जित होता है। जब तक यह संस्कार नहीं हो जाता तब तक वह बालक से कम नहीं है। इस संस्कार के बाद उन्हें वयस्क माना जाता है। जब किसी परिवार में बालक की आयु हो जाती है तो पिता मुखिया के पास जाता है और मुखिया के द्वारा एक निश्चित तिथि की घोषणा की जाती है। गाँव वालों को एकत्र होने के लिए कहा जाता है। उत्सव के दिन बालकों को स्नान उन्हीं दाइयों के द्वारा करवाया जाता है जिनके हाथों से जन्म हुआ हो। उत्सव में उपस्थित स्त्रियों के माथे में सिंदूर लगाया जाता है। इस उत्सव का उद्देश्य है इसके माध्यम से संथाल व्यक्तियों के अंदर बोंगाओ के प्रति आस्था विश्वास को जागृत किया जा सके। क्योंकि संकट के समय इन्हीं बोंगांव ने दरवाजा खोलकर इनके पूर्वजों की रक्षा की थी।

● **अंतिम संस्कार :-** कोई सख्त नियम नहीं है। दफनाते भी हैं और कुछ लोग जलाते भी है। दोनों ही प्रकार के विधियों का प्रयोग किया जाता है।

४) संथाल उत्सव :-

● **बधना उत्सव :-** फसलोंत्सव के रूप में मनाते हैं। इसकी कोई तिथि निश्चित नहीं है। मुखिया के द्वारा तय तिथि को ही यह मनाया जाता है, जिस दिन कोई अन्य उत्सव नहीं होता। पहले दिन गाँव के बाहर कुछ पशु व अंडे की बलि देकर मवेशियों को धोया जाता है और पूजा स्थान पर लाते हैं। यह उत्सव तीन दिन तक मनाते हैं और ग्रामीण मद्यपान करते हैं।

● **डोलजात्रा :-** डोलजात्रा के दिन संथाल ग्रामीण पूजा स्थान पर जाते और बलि देते हैं। गाँव के रास्ते पर चलते हुए एक-दूसरे पर पानी छिड़कते हैं। लेकिन इस प्रथा में रंग का प्रयोग वर्जित होता है।

● **छाता पूजा :-** एक छाता खंबे के अंतिम छोर से बाँध दिया जाता है जो जमीन में धंसा या पकड़ा गया रहता है। उसकी पूजा की जाती है।

● **संक्रत :-** सामान्य रूप से बधना के बाद लगभग एक पक्ष तक किया जाता है। इस त्यौहार पर लोग लाठियों के साथ नाचते हैं। दूसरे दिन धनुर्विद्या की प्रतियोगिता होती है, कुछ दूरी पर केले का पौधा लगाया जाता है और जो भी संथाल उसे निशाना बनाता है उसे जोगमाड़ी के द्वारा या संयुक्त मुखिया के द्वारा कंधे पर लेकर जाते हैं।

● **चरक पूजा :-** यह अप्रैल महीने के चाँदनी रात में होता है मुख्यत: नवयुवक उपस्थित होते हैं। सामान्य रूप से संथाल गोधूलि बेला के बाद भूतों के डर से घर से बाहर नहीं निकलते। परंतु इस उत्सव में वह बाहर निकलते हैं।

५) कला :- सौंदर्य की पूर्ण अभिव्यक्ति को ही हम कला नाम देते हैं। घर मिट्टी के बने होते हैं। मिट्टी की दीवारों को रंगने के लिए मिट्टी में कोयला पीसकर लगाया जाता है। गोबर से फर्श की रंगाई

शेष पृष्ठ संख्या 31 पर

बदलते परिवेश में हिन्दी का नया स्वरूप

संतोष बंसल

जिस प्रकार यह कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है, भाषा के विषय में भी यही कहा जा सकता है कि वह अपने समय का आईना होती है। वस्तुतःनयी सदी की शुरुआत में 'ग्लोबलाइजेशन' या वैश्वीकरण ने दुनिया के तमाम देशों के लोगों को एक दूसरे के नजदीक ला दिया, तो कंप्यूटर और इंटरनेट ने उन्हें सम्प्रेषण का तीव्रतर माध्यम दिया। इसके साथ सोशल मीडिया और स्मार्ट फोन ने अभिव्यक्ति का नया मंच प्रदान करने के साथ लोगों की दुनियावी दूरियां मिटा दी। भारत में भी 'डिजिटल इंडिया' के प्रारूप के साथ जितनी तेजी से मोबाइल या स्मार्ट फोन का इस्तेमाल हुआ, उससे गाँवों का शहरों से और शहरों का 'मेट्रो सिटीज' से संपर्क शुरू हो गया। यह संपर्क देश के लोगों का दुनिया के अन्य देशों में रहने वाले प्रवासी भारतीयों के साथ- साथ वहाँ के विदेशियों से भी हुआ। मैंने स्वयं अपने अमेरिका प्रवास के दौरान देखा कि बड़े-बड़े मॉल्स के 'काउंटर' पर खड़े होकर हिसाब-किताब जोड़ने वाले व्यक्ति हिन्दी में हमारा अभिवादन और हमसे वार्तालाप करने की कोशिश कर रहे थे। इस प्रकार विदेशों में 'इंडियंस' की बहुतायत मात्रा में रिहाईश और 'इंडिया' के बाजार में बड़े-बड़े 'ब्रांड्स' की बढ़ती खपत ने भी हिन्दी का बड़ी तेजी से प्रचार और प्रसार किया। और पिछले दिनों हिन्दी के कुछ शब्दों को अंग्रेजी भाषा की एक डिक्शनरी का हिस्सा बनाया गया तो हिन्दी के लोगों को लगा कि हिन्दी अब विश्व स्तर पर आगे बढ़ रही है। इन सब स्थितियों और परिस्थितियों का साहित्य, भाषा और संस्कृति पर भी असर हुआ, ऐसे में हिन्दी भाषा पर कैसा और क्या प्रभाव पड़ा ? उसका रूप कितना बदला ? वह क्या एक 'नयी वाली हिन्दी' है ? जिसे हम 'आज की हिन्दी' कहकर सम्बोधित कर रहे है। यह हम हिन्दी भाषा के इतिहास के साथ वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उसके स्वरुप की जांच करेंगे, तभी निष्कर्ष सामने उपस्थित होगा।

अपने प्रारूप में भाषा के रूप में हिन्दी के वास्तविक अस्तित्व में आने का समय एक हजार ईसवीं ही माना जा सकता है, जो कि हिन्दी साहित्य के आरम्भ होने का भी काल है। प्रारम्भ में हिन्दुई या हिन्दवी शब्दों का प्रयोग प्राचीन हिन्दी के लिए प्रयुक्त हुआ है, किन्तु तेरहवीं सदी में अमीर खुसरों ने इसका हिन्दी शब्द प्रयोग किया। वस्तुतः हम हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी नामों का प्रयोग जिन भाषा रूपों के लिए करते हैं, व्याकरणिक स्तर पर वे एक ही हैं। इस भाषा में जब बोलचाल के शब्दों का प्रयोग होता है तो उसे बोलचाल की हिन्दी या हिन्दुस्तानी कहते हैं, और इनके साथ जब संस्कृत के कठिन तत्सम शब्दों का काफी प्रयोग होता है तो उसे साहित्यिक हिन्दी कहते हैं एवं जब उन शब्दों के साथ अरबी, फारसी, तुर्की के शब्दों का प्रयोग होने लगता है तो उसे उर्दू कहते है। मिर्जा गालिब ने भी अपने पत्रों में कई स्थानों पर हिन्दी-उर्दू को समानार्थी रूप में प्रयुक्त किया है, यह तो बाद में अंग्रेजों की भाषा नीति के कारण दोनों को अलग-अलग भाषाएँ माना जाने लगा तथा उर्दू को मुसलमानों से जोड़ दिया और हिन्दी को हिन्दुओं से। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से जिस हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रमुख स्थान दिलाने की बात होती है, वह आज हिन्दी प्रदेशों की सरकारी भाषा है। और जो पूरे भारत की राजभाषा है एवं समाचारपत्रों और फिल्मों में जिसका प्रयोग होता है, वही भाषा हिन्दी-प्रदेश में शिक्षा का माध्यम है और जिसे 'परिनिष्ठित हिन्दी', 'मानक हिन्दी' के नामों से भी अभिहित करते है। इस प्रकार अपने परिवेश और जरूरत के अनुसार इसके नामों में विशेषण जुड़ता या बदलता रहा है। वस्तुतः किसी भी क्षेत्र का आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक बदलाव उसकी भाषा में भी परिलक्षित होता है और सही भाषा वही होती है जो अपने परिवेश से पैदा होती है। यही तथ्य हिन्दी भाषा पर लागू होता है, क्योंकि 'वर्चुअल टाइम' के बदलते परिवेश ने उसका स्वरूप बदला है और उसे आज विभिन्न नए नामों से पुकारा जा रहा है। कोई उसे 'ग्लोबल हिन्दी' नाम देता है और कई विद्वान उसे 'आज की हिन्दी' या 'नयी वाली हिन्दी' कहकर सम्बोधित कर रहे हैं।

वैसे आज से डेढ़ सौ वर्ष पूर्व हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के प्रारम्भ में ही साहित्य में नए युग के सूत्रधार भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने लिखा, 'हिन्दी नयी चाल में ढली', जबकि उस समय 'खड़ी हिन्दी' अपने पाँव पर खड़े होने के लिए अपनी लिपि का सहारा ले रही थी। यही वह दौर था जब १८५७ की क्रांति के बाद कम्पनी राज का प्रभुत्व हो गया था और धीरे-धीरे अंग्रेजी के शब्द हिन्दी भाषा में आ रहे थे। यही वह वक्त था जब आर्य समाज के प्रचार-प्रसार के कारण तत्सम शब्दों का प्रयोग बढ़ा और छायावाद तक आते-आते हिन्दी 'परिनिष्ठित हिन्दी' में निखर गयी। जयशंकर प्रसाद, महाकवि निराला, पंत और महादेवी वर्मा का पूरा साहित्य इस दृष्टि से दर्शनीय है और इसके बाद प्रगतिवादी आंदोलन के कारण तद्भव शब्दों के प्रयोग में वृद्धि हुई। स्वतंत्रतता प्राप्ति के बाद हिन्दी के शब्द भण्डार को पारिभाषिक शब्दों की बहुत आवश्यकता पड़ी, क्योंकि वह तब विज्ञान, वाणिज्य और विधि की भी भाषा हो रही थी। जिसकी पूर्ति के लिए अनेक शब्द अंग्रेजी और संस्कृत से लिए

गए और अनेक नए शब्द बनाये गए। आठवें दशक में कंप्यूटर और माइक्रोसॉफ्ट के आने के बाद और 'आई.टी.' इंडस्ट्री के विकास के साथ ही बहुत से नए तौर-तरीके जीवन में शामिल होने के साथ ही इस 'फील्ड' से सम्बंधित शब्द अनायास ही हमारी भाषा में सम्मिलित हो गए और 'विजुअल मीडिया' के उत्तरोत्तर विकास के साथ इसकी शब्दावली भी विकसित होती जा रही है। इस प्रकार तब से आज तक जहाँ साहित्य में अनेक विधाओं और रूपों में हिन्दी समृद्ध होती गयी, वहीं हम हिन्दी भाषा को उसका उचित सम्मान और स्थान दिलाने के लिए भी प्रयत्नरत रहें। वास्तव में 'किसी भाषा के प्रचार क्षेत्र में जैसे-जैसे विस्तार होता है, उसके एकाधिक रूप विकसित होने लगते हैं।' (डॉक्टर भोला नाथ तिवारी-हिन्दी भाषा : उद्भव, विकास और स्वरुप-हिन्दी साहित्य का इतिहास-सम्पादक डॉक्टर नगेंद्र)

यह सच है कि समाज में परिवर्तन के साथ ही साहित्य की संस्कृति में बहुत बदलाव आया और हिन्दी के प्रति अन्य क्षेत्रों के लोगों का भी रुझान होने लगा क्योंकि अभिव्यक्ति की गहनता और सुघढ़ता उसकी अपनी भाषा या मातृभाषा में ही सहज और सरल होती है।हिन्दी में लिखने वाले पहले जहाँ हिन्दी विभागों, पत्रकारिता और हिन्दी से जुड़े संस्थानों से आते थे, वहीं अब इंजीनियरिंग, मैनेजमेंट और ज्ञान-विज्ञान के दूसरे क्षेत्रों के लोगो का भी जुड़ाव हुआ है और उनके अनुभवों का दायरा और नयापन न केवल हिन्दी साहित्य को, बल्कि हिन्दी भाषा को भी समृद्ध कर रहा है, क्योंकि उनके लेखन में उनके भावों और विचारों के साथ उस व्यवसाय से जुड़े तकनीकी और यांत्रिक शब्दों की भी प्रविष्टि हुई है। इसके अतिरिक्त साहित्य कविता-कहानी तक सीमित न रहा, उसमें आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण, यात्रा वृत्तांत और मनोविज्ञान, समाज विज्ञान जैसे तमाम विषयों की नयी विधाएँ शामिल हुई। और फिर सोशल मीडिया के जीवन में प्रवेश के साथ ही इस मंच के तमाम माध्यम ब्लॉग, गूगल, फेसबुक, व्हाट्सअप, ट्विटर, यू-ट्यूब, इंस्टग्राम ने अभिव्यक्ति को एक खुला मंच प्रदान किया, जहाँ न कोई रोक-टोक है, न प्रकाशक और सम्पादक का दखल या निर्णय। इस तरह दो हजार तीन में इंटरनेट पर जिस डिजिटल हिन्दी लेखन की शुरुआत हुई थी, उसका 2020 तक आते-आते इस तरह विकास हुआ कि अब वह पहचान में ही नहीं आती । अब इस 'डिजिटल हिन्दी' को किस खांचे में रखा जाए ? यह हम आगे तय करेंगे। इनके साथ ही ई-मेल और ई-बुक की दुनिया का भी विस्तार हुआ, जिससे पुस्तकालय संस्कृति तो खत्म नहीं हुई, हाँ ऑनलाइन पठन और पुस्तक खरीद का रास्ता खुल गया । इन सबका फायदा यह हुआ कि अब अंग्रेजी के वर्चस्व के आगे हिन्दी वाले अपनी पुरानी हीनता बोध से मुक्त हो गए हैं।

इसी के साथ भूमण्डलीकरण के कारण विश्व के अलग-अलग देशों के लोग एक दूसरे के पास आ रहें हैं, तो उनकी भाषाएँ भी पास आ रही हैं । विदेशी विद्वानों के साथ ही प्रवासी भारतीयों ने भी दूसरे देशों में जाकर हिन्दी लेखन को पत्रकारिता और अनुवाद के माध्यम से समृद्ध किया। इससे एक तो उनकी स्थानीय संस्कृति से हिन्दी समाज अवगत हुआ, दूसरे वहाँ की भाषा के भी कुछ शब्द अनायास ही हिन्दी में आ गए। लगभग यही स्थिति भारत में भी हुई जहाँ हिन्दी साहित्य का अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ, वहीं अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के लेखकों के साहित्य के हिन्दी अनुवाद में उनकी संस्कृति एवं भाषा के लोक शब्द भी हिन्दी में आये। इस तरह राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनुवाद ने हिन्दी भाषा के अनुभव और शब्द भण्डार में उत्तरोत्तर वृद्धि की है । इसके साथ सिनेमा और हिन्दी न्यूज चैनलों के विस्तार ने हिन्दी भाषा का रुख और रूप बदलने में अहम् भूमिका निभाई है। जहाँ हिन्दी फिल्मों की लोकप्रियता से उनकी खास बम्बई शैली ने देश-विदेश में अपनी धमक दिखाई, तो उसकी वही मुंबइयाँ भाषा और 'डॉयलॉग' अच्छे खासे लोकप्रिय हुए, जिसने साहित्यिक हिन्दी के समानांतर अपनी धाक जमाये रखी। और फिलहाल हिन्दी साहित्य से सिनेमा का रिश्ता फिर से मजबूत हुआ है, जो कि बीच में कुछ टूट-सा गया था। टेलीविजन की हिन्दी खबरों में भी हिन्दी भाषा अपने अंग्रेजी -मिश्रित स्वरूप में सामने आयी और बीच में चलने वाले विज्ञापनों में वर्तनी की अशुद्धतता के बावजूद इस भाषा का बाजारीकरण हुआ। इस प्रकार हिन्दी भाषा सभी टी.वी. चैनलों की स्क्रीन पर निरंतर चल रहे 'एडवर्टाइज्मेंटस' की बेजोड़ कमाई के साथ, सामाजिक समस्याओं पर लगातार बनने वाली 'डॉक्यूमेंट्री' फिल्मों की कलात्मक प्रस्तुति का सरल साधन भी बन गयी।

इस प्रकार देश-दुनिया में परिवेश के परिवर्तन और वक्त के बदलाव के साथ, इनके प्रभाव स्वरूप हिन्दी में भी नयापन आया है। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि क्या यह परम्परा से अलग कोई नयी हिन्दी है? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि बेशक युवा पीढ़ी के बहुत से लेखक हिन्दी के मुकाबले अंग्रेजी लेखन के ज्यादा निकट हैं और उनमे वैश्विक संवेदना के साथ ही बदला हुआ माहौल भी परिलक्षित होता है। लेकिन इस बदली हुई संवेदना में नई पीढ़ी सम्बन्धों को लेकर सुविधा और सहूलियत को तलाशती है और जिस परम्परागत 'प्रेम' को हम रिश्तों की बुनियाद मानते थे, वहाँ वह उसकी नयी उपभोक्ता वादी परिभाषा गढ़ती है। वे जहाँ लैंगिक समानता को लेकर ज्यादा संवेदनशील हैं, वहीं भूमंडलीय सूचना क्रान्ति के कारण संवेदना की जगह सूचना ने ले ली है। और सबंधों में स्थायित्व समाप्त होने के साथ, लेखन में ठहराव और गहनता का भी लोप होता जा रहा है। टेक्नोलॉजी और रफ्तार के

साथ यह 'मोबाइल जेनरेशन' इश्क वाला लव करती है और ब्रेकअप का भी जश्न मनाती है। इस पीढ़ी की शब्दावली में 'ओपन रिलेशनशिप' है तो 'लिव इन रिलेशन' भी। इस प्रकार मोबाइल फोन ने नयी पीढ़ी के जीने का तरीका ही नहीं बदला, बल्कि लेखन की दुनिया भी शब्दों से खिसककर सांकेतिक चिन्हों, तस्वीरों पर आकर टिक गयी है। सोशल मीडिया में 'लाइक' और 'कमेंट' के साथ 'स्माइलीज' और 'इमोटिकॉन्स' की बहुत बड़ी दुनिया है, जिनके सहारे अपने सन्देश और प्रतिक्रिया को आसानी से प्रकट किया जा सकता है। डिजिटल हो गए समय में शब्दों की जगह 'इमोजी' या फिर फोटो लगाने का चलन बढ़ गया है। एक युवा मीडिया विश्लेषक के अनुसार, लेखन जो कि अभिव्यक्ति और पहचान की प्रक्रिया का हिस्सा रहा है, मोबाइल ने उसे संख्या बल और गणितीय आंकड़े का पर्याय बना दिया है। यह गणित हमारी-आपकी भाषा को, लिखे-कहे जाने के तरीके को, शब्द और सामग्री के चुनने की रणनीति पर सीधा असर डालता है। ('श्री विनीत कुमार'-यहाँ भाषा कहन का नहीं, हरकत का मामला है लेख, कादम्बनी पत्रिका अंक सितम्बर 2019)

वास्तव में यह समय 'विजुअल एक्सप्लोजन' का है, जिसमें अब सबको 'विजुअल कम्यूनिकेशन' यानी चित्रों के माध्यम से संवाद करने की आदत पड़ती जा रही है। आज हम फोटोग्राफ खींचने और उसे लोगो तक पहुँचाने की होड़ में इस तरह शामिल हो गए हैं कि हम बहुत से शब्दों को बिसरते जा रहें हैं। इंटरनेट पर नजर रखने वाली एजेंसियों के आंकड़े के अनुसार फेसबुक पर प्रतिदिन तीन सौ मिलियन फोटोग्राफ अपलोड किये जा रहे हैं। एवं इंस्टाग्राम पर तो पांच सौ मिलियन लोग हर दिन सक्रिय रहते हैं और फोटो-दर -फोटो संवाद करते हैं। अब दुनिया फोटो-ज्वर की शिकार हो गयी है और सबसे बड़ी बात यह है कि भारतीयों की औसत हिस्सेदारी सबसे अधिक है। तस्वीरें और इमोजी अब लोगों को रेडीमेड अभिव्यक्ति के नए विकल्प दे रही है और यह तय है कि हमारे कहने-समझने और खासकर कुछ भी अभिव्यक्त करने के तरीकों में तेजी से बदलाव आ रहा है। जबकि इससे पहले अपनी बात कहने-लिखने का माध्यम पत्र और खत होते थे, जिनमें शायरी और कविताओं का इस्तेमाल होता था । चिट्ठियाँ तो बहुत पहले ही लिखनी और पढ़नी छोड़ दी गयी थी, अब यात्राओं में पत्रिकाओं के पढ़ने की परम्परा का स्थान भी स्मार्टफोन की स्क्रीन ने ले लिया है। एक विद्वान के अनुसार 'डिजिटल टेक्नोलॉजी' ने बोलने-बतियाने का हमारा प्यारा शगल ही छीन लिया है। हमारा बाजार, हमारा खाना, हमारी दवाई, हमारी पढ़ाई, हमारा बैंक-सब कुछ हमारे स्मार्टफोन पर सिमट सा गया है। अब हम में से ज्यादातर लोग रेल टिकट बुक कराने या बिजली-पानी का बिल भुगतान करने वाली लाइने का हिस्सा नहीं होते। उन लाइनों में लगकर आपस में बोलने बतियाने का सुख हमसे छीन सा गया है। (श्री धनंजय चोपड़ा, सेंटर फॉर मीडिया स्टडीज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय-लेख-'विजुअल एक्सप्लोजन के समय शब्दों की भूमिका' हिन्दी हिन्दुस्तान अखबार)

इस प्रकार देश और दुनिया के बदलते माहौल में सोशल मीडिया पर इमोजी और फोटोज का इस्तेमाल हमारी भाषा को तेजी से बदल रहा है, उसमें शब्दों की गूंज कहीं खोती जा रही है। ऐसे में हिन्दी भाषा में बदलाव के साथ एक नई आशंका सर उठा रही है कि हम कहीं 'शब्द संकोच' की स्थिति की ओर तो धकेले नहीं जा रहे? जिसमें हमारे शब्द या तो खारिज कर दिए जा रहे हैं या फिर बेमानी करार दिए जा रहे हैं। अगर देखा जाए तो यह चिंता प्रत्येक भाषा के लिए ही है क्योंकि सोशल मीडिया के फलक से प्रसारित और दुनिया में बड़े -बड़े बदलाव लाने वाली शब्द सत्ता तकनीक के रास्ते पर जाकर कहीं अपनी ताकत तो नहीं खो देगी ? यह प्रश्न विद्वानों के लिए विमर्श का है। इसके उत्तर में यह बताना उचित होगा कि हिन्दी में 'डिजिटलीकरण' की रफ्तार प्रत्येक विधा में तेज गति से बढ़ रही है। मीम्स, फोटोशॉप, एंबेडेड विडियो, क्लिप्स, हैश टैग, टैगलाइन, सुपर-जैसे अन्य दर्जनों तरीके हैं, जिनमें डिजिटल या सोशल मीडिया पर हिन्दी दिखाई देती है। एवं इंटरनेट पर डेढ़ दशक पहले जो हिन्दी की शुरुआत हुई थी, उसमें तब से अब तक बहुत विस्तार हुआ है। सोशल मीडिया ने लेखकों की नयी जमात पैदा कर दी है, जो साहित्य से लेकर डिजिटल दुनिया की अन्य विधाओं में भी लेखन के नए आयाम गढ़ रहें हैं। गूगल भी इसके आंकड़े पेश कर रहा है कि डिजिटल प्लेटफॉर्म पर हिन्दी का भविष्य अंग्रेजी एवं बाकी भाषाओं से कही ज्यादा उज्ज्वल है। इसका एक अर्थ यह हुआ कि अकादमिक और सामाजिक हैसियत से जो हिन्दी तेजी से पिछड़ती जान पड़ती है, राजस्व एवं व्यवसायिक दृष्टि से यहाँ उसका तेजी से विस्तार हो रहा है। और जिस भाषा के भीतर जब राजस्व की संभावना बढ़ेगी, तो सामाजिक हैसियत का भी समीकरण बदलेगा।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हिन्दी भाषा का विस्तार विभिन्न क्षेत्रों में तेजी से बढ़ रहा है और वह प्रत्येक स्थान पर अपने नए कलेवर में नजर आती है। यानी कि यह उसकी क्षमता और सामर्थ्य है कि साहित्य, सिनेमा या सोशल मीडिया, सब जगह विषय के अनुकूल उसका रूप-स्वरुप दिखता है एवं जो युवा पीढ़ी का लेखन 'नई हिन्दी' या 'आज की हिन्दी' के नाम से पुकारा जा रहा है, वास्तव में यह हिन्दी बोलचाल वाली एवं आसान शब्दावली लिए है। इसमें आम जीवन में इस्तेमाल होने वाले नए-पुराने शब्द शामिल

हैं एवं जो आज की पीढ़ी ने पढ़ी कम है, लेकिन सुनी और बोली जरूर है। वैसे कोई भाषा नयी या पुरानी नहीं होती, वह विषय और विधा के अनुसार प्रयुक्त होती है। जैसे उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद अपने पात्र और परिवेश के अनुकूल एक ही समय में अलग-अलग हिन्दी लिखते थे। अब सवाल यह है कि वर्तमान युग में डिजिटल हिन्दी को किस खांचे में रखे ? जिसमें अंग्रेजी के बहुत से शब्द दाखिल हो गए हैं। लेकिन यह शब्दों की प्रविष्टि का मामला तो बहुत पुराना है, जिसके कारण समय-समय पर हिन्दी भाषा दिनोंदिन अपने शब्द भण्डार में विस्तृत और विशाल हो गयी है। तो क्या लेखन में हिन्दी का यह वर्चुअल रूप नया है ? या इसे हिन्दी का बहुरंगी स्वरूप कहा जाए ? वास्तव में कोई भी भाषा इतनी इकहरी नहीं होती कि उसे नई और पुरानी के खांचों में बाँट दिया जाए। लेखन के दौरान किसी भी लेखक को कई तरह की हिन्दियाँ या भाषायें इस्तेमाल करनी पड़ती है। यह भाषा कभी चरित्रों के हिसाब से तय होती है, कभी परिवेश के अनुसार और कभी इतिहास के मुताबिक। कोई नई हिन्दी वाला यह जिद नहीं कर सकता कि वह कालिदास कालीन वर्णन में भी नई हिन्दी इस्तेमाल करेगा और तथाकथित पुरानी हिन्दी वाला यह नहीं सोच सकता कि आज के स्कूल -कॉलेज के लड़कों की बातचीत वह पुराने शास्त्रीय अंदाज में लिखेगा। ('श्री प्रियदर्शन'- और अब नई हिन्दी लेख, कादम्बिनी पत्रिका, दिसंबर 2018)

अंततः हम यही कहेंगे कि समय, समाज और परिवेश से कटकर कोई भी भाषा और साहित्य विकसित नहीं हो सकता तथा साहित्य के विकास के साथ-साथ भाषा भी विकास की सीढ़ियां चढ़ती है। हमारे यहाँ पूरा वांङ्मय है, जो श्रुति और स्मृति परम्परा से लेकर लिखित परम्परा तक का गवाह है। और आज विश्व में 'कोविड-19' जैसी महामारी के दौरान 'लॉकडाउन' में भी हमारी प्राचीन संस्कृत भाषा के 'गायत्री मन्त्र' और 'मृत्यंजय मन्त्र' अगर दुनिया की जुबान का हिस्सा बन सकते हैं, तो हिन्दी की कालजयी रचनायें भी आधुनिक डिजिटल युग का हिस्सा बनी रहेंगी। क्योंकि इस विकास के बावजूद हम अतीत को बिसारते नहीं हैं, बल्कि यह हमारे विकास का आधार बनता है। यही वजह है कि हर युग का साहित्य अपने वर्तमान की जमीन में अतीत की खाद डालते हुए भविष्य के बीज का रोपण करता है। तीनों एक दूसरे से जुड़े होते हुए भी अपनी स्वतंत्र पहचान और सत्ता रखते हैं। ('खुल रहा है आसमान' आवरण कथा-कादम्बिनी पत्रिका, दिसंबर-18 अंक) यही बात अक्षरश हिन्दी भाषा पर लागू होती है, जरुरत सिर्फ यह है कि हिन्दी भाषा को शैक्षणिक स्तर पर स्कूल में अनिवार्य और उच्च शिक्षा में वैकल्पिक तौर पर रखा जाए। तो कोई भी आधुनिकता हमें अपनी जड़ों की ओर लौटने से रोक नहीं सकती, इस बात को हम सीधे-सीधे सिनेमा के उदाहरण से समझे तो समझने में आसानी होगी। अभी फिलहाल ही आई फिल्म 'अंग्रेजी मीडियम' में नैतिक मूल्यों वाला ग्रामीण अभिनेता अपना तालमेल, नई दुनिया देखने वाली अपनी पुत्री के साथ भाषा और तकनीक दोनों स्तर पर बैठाने की कोशिश करता है। ये दोनों चरित्र देशी पृष्ठभूमि में रहते हुए, अपने को विदेशी परिवेश में बदलने के बावजूद एकाएक अपनी जड़ों की ओर वापिस लौटने का निर्णय लेते हैं। आज जबकि टेक्नोलॉजी एवं 'टेकसेवी पीढ़ी' का टाइम है तो इस सबका का प्रभाव भाषा और संस्कृति पर पड़ना स्वाभाविक ही है। लेकिन इन सबके बावजूद हिन्दी भाषा अपने कालजयी साहित्य के साथ 'क्लासिकल' रूप में तो विद्यमान रहेगी ही, साथ ही डिजिटल लेखन के वर्चुअल स्वरूप में भी अपना बाजार बढ़ाएगी।

-संतोष बंसल
मियांवाली नगर, पश्चिम विहार
दिल्ली-110087

पृष्ठ संख्या 15 का शेष

भारत को स्थायी प्रतिनिधित्व मिलता है तो वह यथाशीघ्र इस शीर्ष विश्व संस्था की भाषा बन जाएगी। आज विश्व का हर छठा व्यक्ति हिन्दी बोलने अथवा समझने में सक्षम है और यदि हिन्दी संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रतिष्ठा सहित आसीन नहीं है तो यह विश्व के हर छठे व्यक्ति के मानवाधिकार का उल्लंघन है । ऐसी स्थिति में मैं संपूर्ण हिन्दी जगत से आग्रह करता हूँ कि वह एकजुट होकर हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा का दर्जा दिलाने के लिए प्रयास करे। यदि ऐसा नहीं भी होता है तो भी हिन्दी बहुत शीघ्र वहाँ पहुँचेगी। वर्तमान समय भारत और हिन्दी के तीव्र एवं सर्वोन्मुखी विकास का द्योतन कर रहा है और हम सब से यह अपेक्षा कर रहे हैं कि हम जहाँ भी हैं, जिस क्षेत्र में भी कार्यरत हैं वहाँ ईमानदारी से हिन्दी और देश के विकास में हाथ बँटाएँ। सारांश यह कि हिन्दी विश्व की सबसे शक्तिशालिनी भाषा बनने की दिशा में उत्तरोत्तर अग्रसर है। वह विश्व स्तर पर बहुत तेजी से प्रसार पा रही है। हमें अपने स्तर पर इस सत्कार्य को गति प्रदान करना होगा।

डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, मुंबई विश्वविद्यालय
मुंबई-400098

संथाली भाषा : आठवीं अनुसूची में आने के बाद भी विलुप्त होने का खतरा है

संथाली या होड़ भाषा भारत की प्राचीन भाषाओं में से एक है । संथाली भाषा-भाषी इसे अत्यधिक विकसित साहित्यिक और पूर्व-वैदिक काल की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत मानते हैं । वर्तमान भाषा वैज्ञानिक इसे एस्ट्रो-एशियाई समूहों के एस्ट्रो-एशियाई परिवार की मुंडा भाषा समूह के अंतर्गत मान्यता देते हैं । परंपरागत संथाली भाषा और साहित्य का विकास और प्रचार 1870-75 के बाद से कुछ विदेशी मिशिनरियों द्वारा शुरू किया गया । तत्कालीन जनजातीय समुदाय के बीच धर्म प्रचार और प्रशासनिक पकड़ के लिए उनकी ही भाषा में संवाद आवश्यक था । बाद में जी आर्चर ने 1940 के दशक की शुरुआत में संथाल कविता का उल्लेखनीय संग्रह किया। अंग्रेजी काल में संथाली रोमन लिपि में लिखी जाती थी ।

इसे जनजातीय कविताओं के विशेष संदर्भ के साथ भारत की साहित्यिक परंपरा में एक महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है । गुलाम भारत में तब गरीब संथाली समुदाय स्वयं इसे प्रकाशित कराने में असमर्थ था । कालक्रम में झारखण्ड-बिहार में देवनागरी में और बंगाल-ओडिशा में बांग्ला या ओड़िया लिपि में नाटक, लोककथा, लोकगीत, संथाली शब्दकोश और पारंपरिक साहित्य का प्रकाशन हुआ । संथाली भाषा के विकास में आकशवाणी की भूमिका महत्वपूर्ण रही है । भागलपुर, रांची के अलावा बंगाल के कुछ आकाशवाणी केन्द्रों से इसके लोकगीत, वार्ताओं के अलावा अन्य कार्यक्रम प्रमुखता से प्रसारित होते रहे हैं और जमशेदपुर केंद्र की स्थापना के बाद वहाँ से भी इसका प्रसारण किया जाने लगा । आकाशवाणी के पूर्व उप महानिदेशक डॉक्टर पीसी हेम्ब्रम और ग्रेस कुजूर के प्रयासों से अन्य भाषाओं के साथ संथाली में भी समाचारों का प्रसारण रांची से शुरू हुआ । स्व. आदित्य मित्र संताली ने अपने पूरे जीवनकाल तक संथाली शिष्ट साहित्य को आकाशवाणी के ग्रामीण कार्यक्रम के माध्यम से समृद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । ऐसे ही कार्यक्रमों में लगातार अपनी सहभागिता निभाने वाले एक साहित्यकार हुए डॉक्टर डोमन साहू समीर । संथाली जो संथाल परगना एवं उसके आस-पास के क्षेत्रों में संथाल नामक जनजाति द्वारा बोली जाती थी । इस जनजातीय भाषा को एक व्यापक रूप देने में इनकी महत्ती भूमिका थी । डॉ. समीर मूलत: हिन्दी भाषी थे, परन्तु हिन्दी के विशाल क्षेत्र को छोड़कर उन्होंने इस जनजातीय भाषा एवं साहित्य को अपनी बहुमूल्य सेवायें अर्पित कीं । इस काम में वे पिछले पाँच दशकों से भी अधिक समय से लगे हुए थे ।

संथाली भाषा और साहित्य के क्षेत्र में आचार्य द्विवेदी ने जिस प्रकार और जितना 'सरस्वती' के माध्यम से हिन्दी के लिये किया, उससे कुछ अधिक ही डॉ. समीर ने 'होड़ सोम्बाद' नामक संथाली साप्ताहिक के माध्यम से संथाली के लिये किया है । इनमें

सुनील बादल

साहित्यिक प्रतिभा कूट-कूटकर भरी पड़ी थी तथा यदि वे चाहते तो सहज ही हिन्दी साहित्याकाश में अपनी कीर्ति पताका फहरा कर अक्षय यश के भागी बन सकते थे । परन्तु इन्हें इस उपेक्षित, तिरस्कृत और विस्मृत संथाली भाषा की सेवा करना ही भाया और इन्होंने अपने जीवन के सारे अनमोल वर्ष इसी काम में खर्च कर दिये । इस प्रकार ये स्वत: ही त्यागमूर्ति महर्षि दधीचि के समकक्ष इन्होंने सेवा, त्याग, लगन एवं स्पृहा का एक ऐसा उदाहरण हमारे सामने प्रस्तुत कर दिया जो आज के युग में एकदम दुर्लभ तो नहीं, विरल अवश्य है ।

हिन्दी साहित्य के इस एकांतप्रिय मनीषी का जन्म झारखण्ड राज्य के वर्तमान गोड्डा जिले के पंदाहा नामक गाँव में एक सामान्य कृषक परिवार में 30 जून, 1924 को हुआ। 1942 में पटना विश्वविद्यालय से मैट्रिकुलेशन की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने के बाद वे भागलपुर के टी.एन.बी कॉलेज में पढ़ने लगे, परन्तु 1942 के राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के कारण इनकी उच्च शिक्षा अधूरी ही रह गयी । पारिवारिक परिस्थितियों से बाध्य होकर इन्हें 1944 में एक छोटी-सी सरकारी नौकरी में आ जाना पड़ा । बिहार के तत्कालीन ख्यातिलब्ध नेता पं. विनोदानंद झा की प्रेरणा और सलाह से ये जनवरी, 1947 से 'होड़ सोम्बाद' (संथाली साप्ताहिक) के संपादक बन गये। इस प्रकार इनके सबल एवं सुदृढ़ हाथों में संथाली भाषा एवं साहित्य को सजाने तथा संवारने का भार आ गया था, जिसे इन्होंने बड़ी लगन और ईमानदारी से निभाया ।

22 दिसंबर, 2003 से संथाली भारत की एक आधिकारिक भाषाओं में शामिल हो गयी, जब इसे भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल किया गया । इस दिन संथाली भाषा दिवस मनाया जाता है । संथाली लिपि ओलचिकी फॉन्ट को विश्व स्तर पर संस्करण 5.1.0 के रिलीज के साथ चार अप्रैल, 2008 को विश्व स्तर पर यूनिकोड मानक से जोड़ा गया । 'भारतीय भाषाओं के लिए प्रौद्योगिकी विकास' (टीडीआईएल) द्वारा दिल्ली में आठ सितंबर, 2009 को सार्वजनिक डोमेन में संथाली ओलचिकी सॉफ्टवेयर टूल्स को जारी किया गया ।

संथाली भाषा साहित्य के डिजिटाइजेशन एवं विकास के लिए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सरकारी और गैर-सरकारी संस्थानों द्वारा प्रयास किये जा रहे हैं, जिनमें मुख्य रूप से ओलचिकी सॉफ्टवेयर विकास परियोजनाएं शामिल हैं । अंतरराष्ट्रीय स्तर पर यूनिकोड कंसोर्टियम का कार्य आमेरिका द्वारा संथाली में विकिपीडिया

का ओलचिकी में कार्य, एशिया और अफ्रीका की भाषाओं और संस्कृतियों के अध्ययन के लिए संस्थान (आईएलसीएएए), टोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज द्वारा ओलचिकी कन्वर्टर पर सॉफ्टवेयर बनाने का कार्य प्रगति में है ।

सीबीजी, सुंदरबर्ग, स्वीडन द्वारा संथाली कंप्यूटर एडेड ट्रांसलेशन (सीएटी) के लिए काम शुरू किया गया है । लायनब्रिज प्रौद्योगिकी, विंटर स्ट्रीट, मैसाचुसेट्स द्वारा ओलचिकी लिपि में संथाली भाषा गुणवत्ता निरीक्षण के लिए कार्य हो रहा है, जो कमियों को तलाश कर सुझाव देते हैं । सिंपल डाइरेक्टमीडिया लेयर (एसडीएल), मेडेनहेड, यूके, ओएलजी और 3डी के माध्यम से ऑडियो, कीबोर्ड, माउस, जॉयस्टिक और ग्राफिक्स हार्डवेयर को निम्न स्तर की पहुँच प्रदान करने के लिए ओलचिकी सामग्री प्रबंधन और भाषा अनुवाद सॉफ्टवेयर के लिए काम कर रहा है । लंदन की एक कंपनी द्वारा संथाली में ओलचिकी स्क्रिप्ट के साथ स्मार्टफोन, टैबलेट और क्लासिक फोन बनाया गया है । स्वयं का लेखन प्रणाली होने से भाषा संरक्षण में मदद मिलती है और इसके बोलने वालों को भी समाज में सही स्थान मिलता है ।

संथाली साहित्य राष्ट्र-प्रेम की भावना से ओत-प्रोत है । अपनी संस्कृति के प्रति गौरव-बोध वस्तुतः राष्ट्रीय अस्मिता का हिस्सा है और राष्ट्रीय अस्मिता राष्ट्र-बोध का अभिन्न हिस्सा है । प्रगति, विकास, संस्कृति, इतिहास-भूगोल आदि की जड़ भाषा होती है और भाषा को समृद्ध साहित्य ही करता है ।

राज्यसभा में बीजेडी सदस्य सरोजिनी हेम्ब्रम ने शून्यकाल के दौरान लोक महत्व से जुड़ा अपना मुद्दा संथाली भाषा में उठाया । उन्होंने इस भाषा की लिपि 'ओल चिकी' तैयार करने वाले पंडित रघुनाथ मुर्मू को भारत रत्न दिए जाने की मांग भी की । बीजेड़ी सदस्य ने कहा कि 1925 में संथाली की लिपि तैयार करने वाले पंडित मुर्मू का आदिवासी जनजीवन में बहुत ही ऊँचा और खास स्थान है और राज्य में उन्हें महान सांस्कृतिक आदर्श का दर्जा दिया जाता है ।

संथाली 'ऑस्ट्रो-एशियाटिक' परिवार की एक शाखा से जुड़ी भाषा है । इसका अध्ययन करने वाले बताते हैं कि भारत, बांग्लादेश, नेपाल और भूटान में करीब 60 लाख बोलते हैं । भारत में संथाली भाषा का प्रयोग झारखंड, असम, बिहार, उड़ीसा, त्रिपुरा और पश्चिम बंगाल में होता है ।

6 दिसंबर, 2019 को संथाली भाषा में पहली बार उच्च सदन में सवाल उठाया गया । सभापति एम वेंकैया नायडू और उप सभापति हरिवंश ने सराहना की । सरोजिनी हेम्ब्रम की बात पूरी होने के बाद सभापति ने कहा कि पहली बार सदन में संथाली बोली गई है और वह भी एक महिला सदस्य द्वारा । वेंकैया नायडू अक्सर शून्यकाल के दौरान सदस्यों को लोक महत्व से जुड़े उनके मुद्दे सदन में अपनी भाषा में उठाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं । वे यह भी सुनिश्चित करते हैं कि अन्य सदस्यों के लिए स्थानीय भाषा का हिन्दी और अंग्रेजी में अनुवाद उपलब्ध हो । संथाली का दोनों ही भाषाओं में अनुवाद उपलब्ध था । उप सभापति हरिवंश ने भी उच्च सदन में पहली बार संथाली का स्वागत करते हुए कहा कि पंडित मुर्मू की न केवल आदिवासी समुदाय में खास जगह है बल्कि वे बहुत ही बेहतरीन साहित्यकार भी थे और उन्होंने कई किताबें भी लिखी हैं ।

1980 में तत्कालीन कुलपति डॉक्टर कुमार सुरेश सिंह ने जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग की स्थापना कराई और प्रथम अध्यक्ष भाषा वैज्ञानिक डॉक्टर राम दयाल मुंडा बने जिन्हें मिनेसोटा विश्वविद्यालय अमेरिका से बुलाया गया । नौ झारखंडी भाषाओं की पढ़ाई एम.ए. स्तर तक शुरू हुई जिसमें संथाली भी एक थी ।

इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केंद्र, राँची शाखा के अंतर्गत ओलचिकी स्क्रिप्ट (संताली) पर चल रही कार्यशाला में पूर्व प्राचार्य बी.एन. झा ने लिपि के आविष्कार के बारे में बताया कि संथाली लिपि में 30 अक्षर हैं । संथाली भाषा में स्वर के अनुसार स्वर और व्यंजन विभाजित हैं । लिपि में छह स्वर, चार व्यंजन और चार विशिष्ट व्यंजन शामिल हैं । अक्षरों का सबसे महत्वपूर्ण और दिलचस्प हिस्सा यह है कि प्रत्येक का एक निश्चित अर्थ होता है और संथाल की गतिविधि या चीजों से संबंधित होता है ।

झारखंड के पूर्व मुख्यमंत्री रघुवर दास ने राज्य की संस्कृति और भाषा उसकी पहचान कायम रखने के निमित्त संथाल के सभी सरकारी कार्यालयों का हिन्दी के साथ-साथ संथाली भाषा यानी ओलचिकि लिपि में भी नाम दर्ज कराया था । भाषा, संस्कृति को बचाने के लिए संथाल के वीरों ने संघर्ष किया था । इसके अलावा स्कूलों में बच्चों को 1 से लेकर पाँचवीं तक की पढ़ाई संथाली भाषा ओलचिकी लिपि में भी कराये जाने की घोषणा भी हुई । राँची राजभवन के मुख्य द्वार में भी ओलचीकी में नामकरण किया गया । संथाली भाषा में प्रथम साहित्य अकादमी पुरस्कार 2005 में दिया गया और हर वर्ष यह शीर्ष सम्मान एक साहित्यकार को मिल रहा है। संथाली भाषा के सामने चुनौतियां भी हैं क्योंकि अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में पढ़ने वाली नई पीढ़ी हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं की तरह अपनी भाषा बोलने में भी शर्म का अनुभव करते हैं । गुलामी और विदेशी संस्कृति को बढ़ावा मिलने के कारण आम लोगों में भी अपनी भाषा-संस्कृति के प्रति हीन भावना आ गई है जिससे पूरे भारत को निबटना पड़ेगा अन्यथा यह प्राचीन भाषा भी लुप्त होकर इतिहास बन रह जायेगी ।

-सुनील बादल
126 रतनलाल कॉम्प्लेक्स
रातू रोड रांची-834001 (झारखण्ड)

हिन्दी की राष्ट्रीय स्वीकार्यता : समस्या और संभावनाएँ

डॉ. वनीता शर्मा

एक सीमा, एक नाम, एक ध्वज, या एक मुद्रा के अलावा, जो एक देश को एक सम्मानजनक और अद्वितीय राष्ट्र बनाता है, वह उसकी राष्ट्रीय भाषा है। वास्तव में, राष्ट्रीय भाषा एक स्पष्ट संकेतक है जो किसी देश की राष्ट्रीय पहचान का प्रतिनिधित्व करता है। राष्ट्रभाषा लोगों की एकता के पीछे एक प्रेरणा शक्ति है, और उन्हें अन्य देशों से अलग बनाती है, बशर्ते आप अपनी भाषा को सम्मान दें। अपनी राष्ट्रीय भाषा के लिए सम्मान देने का अर्थ है कि यह एक प्राथमिक भाषा होनी चाहिए, साथ ही यह हर स्तर पर संचार का पसंदीदा स्रोत होना चाहिए, चाहे देश में कितनी भी अन्य भाषाएँ हो। लोक-व्यवहार का सशक्त माध्यम, भावोद्गार को प्रकट करने, विचार को बोधगम्य बनाने तथा जगत व्यवहार को चलाने, एक दूसरे को जानने-समझने, विचार विनिमय के लिए परमावश्यक है जो राष्ट्र को राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से सुदृढ़ करती है। उसकी एकता एवं अखंडता को अक्षुण्ण रखने में सहायता करती है जिससे विश्व में उस राष्ट्र का प्रतिनिधित्व व विशेष पहचान स्थापित होती है।

भारत अपनी समृद्ध भाषा एवं सांस्कृतिक धरोहर से सम्पन्न होने के कारण विश्व में सर्वश्रेष्ठ स्थान पर स्थित है। सर्व-सामर्थ्य, सशक्त राष्ट्रभाषा हिन्दी उसकी आधिकारिक भाषा ही नहीं अपितु उसकी अपनी पहचान भी है, जो अपने देश में ही नहीं अपितु विश्व के लगभग 150 देशों में पढ़ाई और बोली जाती है एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी ख्याति पा रही है। देश के हमारे मुख्य प्रतिनिधि अपने विचारों की अभिव्यक्ति को अंतराष्ट्रीय मंच पर भी हिन्दी भाषा के माध्यम से प्रस्तुत करने में गर्व महसूस करते हैं। जिसका जीवंत उदाहरण है हमारे वर्तमान माननीय प्रधानमंत्री जी। आज समस्त विश्व उनकी अभिव्यक्ति का सम्मान ही नहीं करते वरन उन्हे अपनाने का भी प्रयास कर रहे हैं। राष्ट्रभाषा हिन्दी की निर्विवाद प्रमाणिकता है इससे बड़ा मापदण्ड क्या हो सकता है ?

राष्ट्र की पहचान राष्ट्रभाषा, राष्ट्र विकास के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में, मील का पत्थर है, राष्ट्रीय संस्कृति एवं सभ्यता का विकास किस सीमा तक हुआ, उसकी प्रगति का रथ कितनी दूरी तय कर अभीष्ट लक्ष्य के कितने सन्निकट या दूरस्थ स्थित है, का संज्ञान कराती है। स्वराज्य प्राप्ति के पश्चात् हमारे संविधान के निर्माताओं ने बिना किसी अवहेलना के, सर्वसम्मति से 14 सितंबर 1949 को हिन्दी को राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित किया । ऐसा इसलिए था कि उस समय भारत के जन-जन की भाषा हिन्दी थी, तथा इसी भाषा मे देश का अधिकतर शासकीय कार्य और प्रचार-प्रसार का कार्य सुगमता से होता था।

सामान्य व व्यवहारिक दृष्टि से भी समूचे राष्ट्र द्वारा व्यवहृत और संविधान द्वारा स्वीकृत भाषा एवं जिस भाषा का अतीत उज्ज्वल हो, जिसमें रचा गया साहित्य समस्त राष्ट्र, देशवासियों और उसकी संस्कृति को समझ आता है, ही किसी देश की राष्ट्रभाषा होती है।

बहु भाषा-भाषी देश भारत में राष्ट्रभाषा को उचित संज्ञा प्रकट करने के लिए आवश्यक था संविधान स्वीकृत भाषाओं में से कोई एक भाषा ऐसी हो, जिससे सम्पर्क भाषा व राष्ट्रभाषा का काम लिया जा सके। हिन्दी भाषा की सामर्थ्य और हिन्दी भाषियों की संख्या दोनों ही हिन्दी को सम्पर्क भाषा या राष्ट्रभाषा और राष्ट्र संघ की भाषा बनने के योग्य बनाती है। इसके अतिरिक्त देश का सरकारी कामकाज जिस भाषा में करने का कोई निर्देश संविधान के प्रावधानों द्वारा दिया जाता है, उसे ही राष्ट्रीय भाषा के रूप मे स्वीकार्यता प्राप्त होती है।

अत: भारत के स्वनिर्मित नवीन संविधान मे 14 सितंबर 1949 को हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में एक मत से स्वीकार किया गया। राजभाषा को संविधान के भाग 17, आठवीं अनुसूची के प्रथम अनुच्छेद 343/1 में स्वीकार किया गया था कि संघ की भाषा हिन्दी, लिपि देवनागरी एवं अंको का अंतर्राष्ट्रीय रूप स्वीकार्य होगा।

अपने स्वतंत्र भाषिक अभिज्ञान एवं मौलिक राष्ट्र के रूप में हिन्दी भाषा की अस्मिता ने राष्ट्रीय एकीकरण एवं उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । यह भाषा लोगों के कौशल, भाव, ज्ञान को प्रकट करने में सहायक सिद्ध हुई है। स्वतन्त्रता संग्राम के आंदोलन में हिन्दी में प्रकाशित पत्र पत्रिकाओं ने देश को आजाद कराने व समस्त देशवासियों को एकता के सूत्र में बांधकर सँजोये रखकर, जन-जन के संघर्ष को इसी स्वर में आवाज दी थी।

स्वतन्त्रता के पश्चात भले ही हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दे दिया गया परंतु अंग्रेजी भाषा का प्रयोग अनवरत चलता रहा। भाषा के प्रचार-प्रसार व विकास के लिए सरकार द्वारा महत्वपूर्ण कदम नहीं उठाए गए । आज भी प्रशासन के कई विभागों में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग उच्चता एवं गौरव का प्रतीक समझा जाता है। इसका मुख्य कारण यह भी हो सकता है कि अनेक सरकारी अधिकारी अंग्रेजी के माध्यम से चयनित होकर, राजकीय सेवा में आए थे। इन्ही अंग्रेज भक्तों के कारण हिन्दी के प्रयोग के प्रस्ताव फाइलों में बंद हो कर रह गए । भाषा का संबंध भावुकता, जनपदिक मोह, पूर्वाग्रह से जुड़ा होता है। भारत जैसे बहुभाषीय, बहू जातीय देश में प्रांतीय भाषाओं के कारण भी भाषा की समस्या काफी उलझ गई है। इन प्रांतीय भाषाओं और अँग्रेजी के साथ-साथ उर्दू भाषा से प्रतिस्पर्धा का माहौल है। जिसके कारण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रभाषा हिन्दी के लिए समस्या उत्पन्न हो रही है।

हिन्दी में शब्द भण्डार व पारिभाषिक शब्दावली तथा लिपि की समस्या भी राष्ट्रभाषा के रूप मे उपयुक्त न होने का मुख्य तर्क यह भी था कि उसमें विज्ञान, तकनीकी, चिकित्सा आदि से संबन्धित शब्दों का

अभाव है। फलत: हिन्दी में इन विषयों की पुस्तकें न तो लिखी जा सकती है, न ही इसमें पढ़ाया जा सकता है। देवनागरी लिपि मे टंकण की समस्या भी एक रुकावट थी । मीडिया के बढ़ते प्रचार-प्रसार ने भी हिंगलिश भाषा का प्रयोग कर हिन्दी के समक्ष अपनी शुद्धता को बनाए रखने में समस्या खड़ी कर दी है। उससे बढ़कर दूरदर्शन, चलचित्र, सिनेमा जगत ने इसकी समस्याएँ और बढ़ा दी हैं। साहित्यिक ज्ञान की पुस्तकों के प्रकाशन व मुद्रण के स्तर, शोध एवं अनुसंधान की अध्ययन सामग्री की अनुपलब्धता ने भी हिन्दी पाठकों की रुचि कम कर दी है। बाजारवाद में आकर्षित विज्ञापनों ने भी हिन्दी के लिए दिन-प्रतिदिन समस्याएँ उत्पन्न करने मे कोई कसर नहीं छोड़ी है।

वर्तमान समय में यह आवश्यक हो जाता है कि हिन्दी को लोक व्यवहार और बोलचाल की भाषा बना अभिव्यक्ति का माध्यम सुदृढ़ किया जाए। युवकों मे देशभक्ति, राष्ट्रीयता, संस्कृति के प्रति लगाव व स्वाभिमान की भावना को जागृत हो और अंग्रेजी के प्रति उदासीनता हो। इस प्रकार हिन्दी के प्रति उनकी हीनता की दृष्टि को दूर किया जाए। अब हिन्दी भारत में ही नहीं वैश्विक धरातल पर भी अपनी जगह बना चुकी है। अब अंग्रेजी को प्रधानता देने वाले अधिकारी भी सेवानिवृत हो रहे हैं और नए अधिकारियों की हिन्दी के प्रति मानसिकता प्रशंसनीय सम्माननीय है । वे अपनी भाषा मे कार्यों को सम्पन्न करने मे गर्व महसूस करते हैं। विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक एवं विदेशी अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर वे अपनी अभिव्यक्ति व विचारों को राष्ट्रभाषा में ही प्रस्तुत कर स्वयं गौरवान्वित अनुभव करने लगे हैं। इस प्रकार अब अंग्रेजी भाषा पर निर्भरता कम होने से लोगों की संकीर्ण व संकुचित मानसिकता मे बदलाव आने लगा है। सरकार के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि राष्ट्रभाषा के संवर्धन के लिए युवकों को कौशल प्रशिक्षण दिया जाए और उसे शिक्षा, विज्ञान, तकनीक तथा रोजगार की भाषा बनाया जाए। इसके लिए हिन्दी विश्वविद्यालियों-अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों की स्थापना की जाए तथा सरकार को इन विश्वविद्यालयों के साथ अनुबंध किया जाए, ताकि इन विश्वविद्यालयों में हिन्दी विभाग की स्थापना हो सके।

हिन्दी का प्रचार-प्रसार व विकास प्रांतीय, राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सोशल मीडिया, प्रिंट मीडिया, दूरदर्शन, सिनेमा आदि के द्वारा शुद्ध-सरल आम जन की भाषा मे किया जाए। हिन्दी में सरकारी विभागों, शासकीय व गैर शासकीय कार्यों के संपादन का कार्य अनिवार्य रूप से किया जाए। भाषा को समृद्ध बनाने के लिए अन्य भाषाओं के शब्दों को भी सहजता से स्वीकार किया जाए। प्राकृतिक और कलात्मक रूप में सर्जनात्मक लेखन, विदेशी भाषा के कृतियों का हिन्दी में अनुवाद करने को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। जिससे हम वैश्विक प्रकाशन घटा कर बहुसंख्यक लोगों के बीच, विशेषकर हिन्दी क्षेत्र में, अपना स्थान बनाने के लिए प्रयासरत हों। इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशनों में हिन्दी के प्रकाशन की शुरुआत करने से नवयुवकों के लिए रोजगार के द्वार भी खुल जाएंगे।

वर्तमान समय में राष्ट्रीय भाषा की अत्यधिक लोकप्रियता बढ़ते अंतर्राष्ट्रीय महत्व के साथ-साथ हिन्दी भाषा के क्षेत्र में रोजगारों के अवसरों में भी अभूतपूर्व वृद्धि हो रही है। केन्द्र सरकार, राज्य सरकार के विभिन्न विभागों और इकाइयों में हिन्दी अधिकारी, हिन्दी अनुवादक, हिन्दी सहायक, प्रबन्धक इत्यादि विभिन्न पदों की नियुक्ति हो रही है।

निजी टी.वी. चैनलों, रेडियो में हिन्दी साहित्य की शुरुआत होने से, समाचार पत्रों, पत्रिकाओं के हिन्दी रूपांतर आने से भी रोजगार में कई गुणा वृद्धि हो जाएगी। मीडिया के क्षेत्र में संपादकों, संवाददाताओं, रिपोर्टरों, न्यूज रीडर आदि भी आज आकर्षण के बिन्दु बन गए हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि अब आई.ए.एस., आई.पी.एस. की परीक्षाओं में भी हिन्दी को अपनाया जाने लगा है।

भाषा भाव की संवाहिका होती है तथा चरित्र की संरचिका होती है। राष्ट्रभाषा मात्र राजनैतिक महत्व की वस्तु नहीं अपितु राष्ट्रीय चरित्र की वस्तु है। राष्ट्रभाषा का महत्व देशरूपी मंदिर में राष्ट्र देवता की प्राण प्रतिष्ठा से है। जिसकी अर्चना करके तथा जिसके चरणों में सब कुछ न्योछावर करके कोई भी राष्ट्र अपने जीवन की सार्थकता को सिद्ध करता है। वैसे भी सैद्धांतिक दृष्टि से भी हिन्दी राष्ट्रभाषा होने के लिए सभी आवश्यकताओं को सम्पन्न करने में समर्थ है। आज यह पूरे विश्व में पढ़ी-पढ़ाई जा रही है। हम भारतवासियों को हिन्दी को राष्ट्रभाषा के सिंहासन पर बिठाना हमारा पुनीत कर्तव्य है। और यदि आज भारतवर्ष को एक विकसित अर्थव्यवस्था बनानी है तो उसे हिन्दी को कार्य पद्धति, शिक्षा, ज्ञान-कौशल, व्यापार, मीडिया बाजार की भाषा बनाना होगा। इसके बिना देश न सम्पन्न बन सकता है न समता मूलक, न महाशक्ति और न ही विकसित अर्थव्यवस्था।

अत: हमें दोहरी मानसिकता को त्याग कर अनेक प्रकार की संकीर्णताओं, आंचलिक पूर्वाग्रहों तथा भावुकता के उद्वेगों से ऊपर उठ कर अपने संवैधानिक संकल्प और कर्म की एकरूपता के द्वारा अपनी ही भाषा को समुचित सम्मान देना होगा तथा भावी पीढ़ी को हिन्दी से साक्षात्कार करा उसके विकास के लिए जागरूक करना होगा। जिससे हमारी भाषा न केवल राष्ट्रभाषा का गौरव अपितु विश्व में नए आयाम स्थापित कर सकें ।

-डॉ. वनीता शर्मा
हैप्पी स्कूल, दरियागंज, दिल्ली

मातृभाषाओं से कटता बाल संसार

रचना चतुर्वेदी

मातृभाषा की सरलतम परिभाषा यह हो सकती है कि यह वह भाषा है जिसे बालक अपनी माँ का अनुकरण करके सीखता है। वैचारिक दृष्टि से तो यह ठीक है परंतु व्यवहारिक दृष्टि से मातृभाषा का व्यापक अर्थ ग्रहण करना चाहिए । बालक जन्म के उपरांत केवल माँ के साथ तो नहीं रहता, वह परिवार में रहता है, और उनकी भाषा का भी अनुकरण करता है। फिर वह समाज में घुलता-मिलता है और समाज की भाषा का अनुकरण करने लगता है। इस प्रकार अपनी प्रारम्भिक अवस्था में अपने जन्मगत परिवेश से बालक जिस भाषा को ग्रहण करता है, वही उसकी मातृभाषा होती है।

मातृभाषा भावों व विचारों के आदान-प्रदान का साधन मात्र नहीं है, अपितु वह संस्कारों व परंपराओं की संवाहिका भी होती है। मातृभाषा मनुष्य के अस्तित्व की पहचान होती है। वह एक जड़ की भाँति मनुष्य रूपी वृक्ष को सुदृढ़ बनाती है। जिस प्रकार जड़ से जुड़कर ही वृक्ष बढ़ता है, उसी प्रकार मातृभाषा से जुड़ाव मनुष्य के विकास को एक समृद्ध आधार प्रदान करता है। मातृभाषा का सुदृढ़ आधार उसमें अन्य भाषाओं को सीखने की क्षमता प्रदान करता है।

मातृभाषा से मनुष्य का घनिष्ठ आत्मीय संबंध होता है। वह संसार के किसी भी कोने में क्यों न चला जाए वह अपनी मातृभाषा में अपनापन सहज ही पा लेता है। इसका कारण है कि बचपन से यह उसकी सबसे निकट की भाषा रही होती है। वह इसी भाषा में कहानियाँ और लोरियाँ सुनकर बड़ा हुआ होता है, इसी में उसने अपनी प्रिय वस्तुओं आदि के नाम सीखे होते हैं और इसी के माध्यम से वह अपने परिवार के सदस्यों से बातचीत करता रहा होता है। यह बालक जब स्वयं एक बालक का पिता या माता बन जाता है तो वह अपने बालक को निस्संदेह अपनी भाषा से जोड़े रखना चाहता है। वह उस दिशा में भरपूर प्रयास भी करता है। परंतु वास्तविकता यह है कि उसके बालपन और उसके बालक के बालपन के बीच एक पीढ़ी का अंतर आ चुका होता है । परिस्थितियाँ बदल चुकी होती हैं। परिणामत: कभी तो अनुकूल परिस्थितियों और सक्रिय प्रयासों के कारण वह ऐसा कर पाता है और कभी परिस्थितियाँ अनुकूल न होने पर या समयाभाव आदि के कारण वह चाहकर भी ऐसा नहीं कर पाता।

मातृभाषा का मातृभूमि से गहरा संबंध होता है। मातृभूमि से यहाँ तात्पर्य उस प्रदेश या प्रांत से है जो व्यक्ति का पुश्तैनी प्रदेश रहा हो। जब तक मनुष्य अपनी मातृभूमि में रहता है, वह बहुत थोड़े से प्रयास से ही अपनी नई पीढ़ी को अपनी मातृभाषा से जोड़े रख पाता है। परंतु उसे छोड़ते ही मातृभाषा पर संकट आने लगता है। जितना बड़ा स्थानांतरण होता है उतना ही बड़ा संकट भी होता है। भविष्य में आने वाले इस संकट की चेतावनी की आहट एक पुरानी कहावत में सुनाई पड़ती है जो बड़े-बुजुर्ग कहा करते थे, ''बेटा जइयो काऊ देस, भले देस या होय परदेस। तीन चीज मत भूलियो, भोजन, भाषा, भेस।'' इस पुरानी कहावत के माध्यम से जिस संकट की आशंका जताई गई थी वह वर्तमान की सच्चाई के रूप में दिखाई दे रहा है। इन तीन चीजों में से भाषा को बचाना सबसे कठिन हो रहा है क्योंकि भाषा सीखना-सिखाना अपने आप में एक पूरी प्रक्रिया होती है, जिसके लिए समय, प्रयास और व्यवहार की आवश्यकता होती है। बदलते परिवेश में इनके अभाव में यह कार्य चुनौतीपूर्ण होता जा रहा है।

मातृभाषा से कटने के कारणों पर विचार करने से पूर्व सिंधी भाषा की चर्चा करना आवश्यक है क्योंकि सिंधी भाषी अपने स्थान से बलपूर्वक स्थानांतरित हुए थे। 1947 में देश के विभाजन के साथ ही सिंधी भाषा पर भारी संकट आ गया था। स्वाभाविक है कि विभाजन के बाद सिंधी भाषियों के सामने पहली समस्या आजीविका और अपने बच्चों की शिक्षा की थी। इस कारण उन्हें कई समझौते करने पड़े थे। एक बड़ा समझौता भाषा के संबंध में भी करना पड़ा था। समाज में घुलने-मिलने और सहायता प्राप्त करने के लिए उन्हें विवश होकर अपनी भाषा को कभी हिन्दी की ओर तो कभी पंजाबी की ओर मोड़ना पड़ा था। दुर्भाग्यवश उन्हें तो अन्य भाषाओं की तरह कोई प्रांत भी नहीं मिला था जो उनकी भाषा को कोई संबल प्रदान करता। इस प्रकार ये लोग चाहते हुए भी अपने बच्चों को अपनी भाषा से प्रभावी रूप से जोड़े न रख सके। हालाँकि, जिस रूप में भी आज सिंधी भाषा जीवित है, उसके लिए सिंधी भाषियों के अथक प्रयास निश्चय ही सराहनीय हैं।

यदि इतिहास पर दृष्टि डाली जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि जब से मनुष्य ने उच्च शिक्षा व आजीविका की खोज में अपने-अपने गाँव, शहर, कस्बे छोड़ कर बड़े शहरों की ओर जाना आरंभ किया तब से ही मातृभाषा को सिखाने के लिए अधिक प्रयास करने की आवश्यकता पैदा हुई है। पहले तो अपनी भूमि व अपने समाज में रहने के कारण यह कार्य सहज संभव था। परंतु नए शहर में स्थापित होने के उपरांत माता-पिता के समक्ष यह प्रश्न आ खड़ा हुआ कि बालक के लिए उस भाषा का ज्ञान अधिक उपयोगी होगा जो उसे अन्य बच्चों से घुलने-मिलने में सहायक हो या कि मातृभाषा का। इस प्रश्न के उत्तर के रूप में पहला संकट मातृभाषा के रूप में बोली जाने वाली बोलियों पर आया जो सरलता से बड़ी भाषाओं की शरण ले सकती थीं। फलस्वरूप मातृभाषा के रूप में भोजपुरी, ब्रजभाषा,

राजस्थानी, मैथिली आदि बोलियाँ बोलने वाले हजारों-लाखों लोगों ने अपने बच्चों को मानक हिन्दी या उर्दू की ओर मोड़ना शुरू किया। आज से 50-60 वर्ष पूर्व तक यह देखा जाता था कि दिल्ली जैसे अनेक बड़े शहरों में माता-पिता आपस में या अपने संबंधियों से तो ब्रजभाषा, भोजपुरी आदि बोलियों में बात करते थे परंतु बच्चों से मानक हिन्दी में बात करते थे। यह विचित्र स्थिति न तो बच्चे समझ पाते थे और न घर पर आने वाले सगे-संबंधी। सबको अटपटा तो लगता था परंतु इसे विकास की ओर पहला कदम मानकर चुप रह जाते थे।

इसे विकास का पहला कदम मानने के मूल में कहीं-न-कहीं यह भावना छिपी रहती थी कि बड़े शहर में आकर हमारे बच्चे कहीं पीछे न रह जाएँ। इस प्रकार अपने बच्चों को विकास की भाषा हिन्दी सिखाकर माता-पिता आत्मसंतोष का अनुभव करने लगे। इसके अतिरिक्त बोली छोड़कर मानक भाषा सिखाने के पीछे अपनी बोली-भाषा को गँवारू मानने की भावना भी रहती थी। इस संदर्भ में डॉ. राही मासूम रजा के उपन्यास "टोपी शुक्ला" की चर्चा प्रासंगिक है। इसका मुख्य पात्र "टोपी" है जिसकी शुद्ध उर्दू बोलने वाली दादी अपनी बहू यानि टोपी की माँ को "पूरबी" बोलने पर अक्सर यह कहकर टोकती थीं कि "बहू, मेरे सामने यह गँवारों की जबान न बोला करो।''

कामकाज के सिलसिले में कई बार लोग दूर-दूर के प्रांतों में भी जाते रहे हैं। किन्हीं परिस्थितियों में इन प्रांतों की भाषा उनकी मातृभाषा से बहुत दूर के वर्ग की होती है। इसका कारण है कि उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक भारतवर्ष में भाषाओं के विविध वर्ग हैं जो परस्पर संबंधित भी नहीं हैं। ऐसे में लोगों का विभिन्न भाषा-भाषी प्रांतों में जाकर बसना बच्चों की भाषा को गंभीर रूप से प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए, यदि एक तेलुगु भाषी बालक अपने माता-पिता के साथ दिल्ली में रहता है तो घर पर तेलुगु सिखाए जाने पर संभवत: वह अपने घर पर तेलुगु में बातचीत करता है परंतु घर से बाहर की दुनिया में तो उसे हिन्दी या अंग्रेजी का ही सहारा लेना पड़ता है। इस प्रकार परिस्थितिवश कॉलेज तक पहुँचते-पहुँचते उसकी मातृभाषा पीछे छूट जाती है। वह निश्चित रूप से उसे भूलता तो नहीं है परंतु उसके प्रयोग के अवसर न मिलने के कारण व्यवहार में कमी अवश्य आ जाती है।

बच्चों की भाषा पर बड़ा प्रभाव स्कूली शिक्षा के माध्यम की भाषा का भी पड़ता है। जब अपने घर पर सीखी गई मातृभाषा मित्रों के बीच की संपर्क भाषा नहीं बन पाती तो स्कूल में सीखी गई हिन्दी या अंग्रेजी उसका स्थान लेने लगती है। तब बालक अपनी मातृभाषा से दूर और हिन्दी या अंग्रेजी के निकट आने लगते हैं। भाषाविदों का मानना है कि यदि इसी गति से स्कूली शिक्षा में हिन्दी-अंग्रेजी का प्रयोग होता रहा तो शीघ्र ही भारत की कई भाषाएँ लुप्त हो सकती हैं।

भारत में बालकों के मातृभाषा से दूर होने का एक बड़ा कारण देशव्यापी अंग्रेजी मोह भी है। यह मोहजाल इतना प्रबल और जटिल है कि अमीर-गरीब, ग्रामीण-शहरी, शिक्षित-अशिक्षित कोई भी इससे अछूता नहीं रहा है। गाँव का किसान और शहर में काम करने वाला मजदूर भी यही प्रयास करता है कि किसी प्रकार उसकी भावी पीढ़ी अंग्रेजी के माध्यम से उनके अधूरे सपने पूरे कर पाए। आज देशभर में नई पीढ़ी के माता-पिता अंग्रेजी को विकास की भाषा मानने लगे हैं। ऊँची नौकरी और बच्चों के सुखमय भविष्य की कुंजी उन्हें इसी भाषा के सानिध्य से प्राप्त होने की संभावना प्रतीत होती ही। इस कारण उनकी यह इच्छा इतनी बलवती होती जा रही है कि वे अपने बच्चों से पैदा होते ही अंग्रेजी में बोलने लगते हैं, भले ही आपस में पति-पत्नी अपनी मातृभाषा में बोलते हों। उन्हें लगता है कि बच्चों को मातृभाषा आए या न आए, अंग्रेजी अवश्य आनी चाहिए।

बड़े शहरों में माता-पिता अपने बच्चों को मातृभाषा से जोड़ नहीं पा रहे हैं। इसका एक कारण यह भी है कि यहाँ माता-पिता दोनों कामकाजी होते हैं। शहर की दौड़धूप और व्यस्त दिनचर्या के बीच वे अपने बच्चों से बातचीत करने या कहानियाँ आदि सुनाकर उनकी भाषा समृद्ध करने का समय ही नहीं निकाल पाते। उनके पास इतने सारे काम होते हैं कि मातृभाषा उनकी प्राथमिकताओं में बहुत पीछे चली जाती है। उनका सारा समय तो नौकरी, घर और बच्चों की पढ़ाई के पीछे भागने में निकल जाता है। वे मातृभाषा से अधिक अपने बच्चों की पढ़ाई, परीक्षा, खेल-कूद आदि को अधिक महत्व देते हैं । इस परिस्थिति में जो भाषा सरलता से बातचीत का काम कर पाती है वही घर में घर कर लेती है। बड़े शहरों का एक बड़ा सच यह भी है कि यहाँ अधिकांश परिवार संयुक्त नहीं हैं। वास्तव में घर पर बुजुर्गों के होने या न होने में बड़ा अंतर होता है। बुजुर्गों के पास समय की कोई कमी नहीं होती और इस कारण वे बड़ी सहजता से बच्चों को मातृभाषा सिखा सकते हैं। बच्चों को कहानी-किस्से सुनाने में वे आनंद पाते हैं और खेल-खेल में बच्चे सहज रूप से उनकी भाषा सीख लेते हैं। परंतु परिस्थितिवश उन्हें अपने बच्चों से दूर ही रहना पड़ता है। अत: इस कारण भी आजकल के बच्चे मातृभाषा नहीं सीख पा रहे हैं। सीखते भी हैं तो उसका व्यवहार न कर पाने के कारण उसमें रुचि बनाए नहीं रख पाते। फिर धीरे-धीरे उससे कटने लगते हैं।

बदलते परिवेश में बच्चों के मातृभाषा से कटने का एक कारण विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच होने वाले विवाह संबंध भी है। यह स्वाभाविक है कि विवाह करने वाले ये जोड़े अवश्य ही अपनी-अपनी मातृभाषा को पीछे छोड़ कर संपर्क भाषा हिन्दी या अंग्रेजी के माध्यम से जुड़े होते हैं। ऐसा नहीं है कि वे अपनी

मातृभाषा जानते नहीं, परंतु उनकी मातृभाषा उनकी निकटता में बाधा उत्पन्न करती है। अत: उन्हें उसका व्यवहार केवल अपने-अपने संबंधियों तक ही सीमित करना पड़ता है। एक कन्नड़ भाषी महिला यदि एक गुजराती भाषी व्यक्ति से विवाह करती है तो देखा जाता है कि वे दोनों आपस में हिन्दी या अंग्रेजी में ही बातचीत करते हैं और फिर अपने बच्चों को भी यही सिखाते हैं। हाँ, संयुक्त परिवार में रहने पर संभवत: स्थिति भिन्न हो सकती है। तब घर के बुजुर्ग अपने पोते-पोतियों को गुजराती सिखाने का प्रयास कर सकते हैं। परंतु बहुत संभव है कि ये बच्चे कॉलेज तक आते-आते गुजराती छोड़कर हिन्दी-अंग्रेजी को ही अपनी भाषा बना लें।

मातृभाषा के संदर्भ में विदेशों में रह रहे लाखों भारतीयों की चर्चा करना अति आवश्यक है। यह सच है कि उन्हें भी अपनी भाषा, अपने देश और अपनी संस्कृति से अतिशय प्रेम है, संभवत: भारत में रह रहे भारतीयों से अधिक। वे भी अपने बच्चों को इनसे जोड़े रखना चाहते हैं। वे इस दिशा में भरसक प्रयास भी करते हैं। परंतु परिणाम कभी अनुकूल तो कभी प्रतिकूल हो जाते हैं। सच तो यह है कि निकटवर्ती खाड़ी के देशों में रह रहे प्रवासी भारतीय अपनी मातृभाषा अपने बच्चों को थोड़े से प्रयास से ही सिखा पाते हैं । इसका एक कारण तो यह है कि इन देशों में भारतीयों की संख्या बहुत अधिक है। साथ ही भौगोलिक दृष्टि से निकट होने के कारण ये लोग भारत में रह रहे अपने संबंधियों से समय के छोटे-छोटे अंतराल में मिल पाते हैं जो उनके लिए अपने बच्चों को मातृभाषा से जोड़ने का कार्य सरल बना देता है। साथ ही ये देश आकार में छोटे हैं और भारतीयों को एक ही भाषा बोलने वाले कई लोग अपने आसपास सरलता से मिल जाते हैं। परंतु अमरीका जैसे विशाल देश में यह कार्य बहुत चुनौतीपूर्ण हो जाता है। समय की कमी, काम की अधिकता और बच्चों को व्यवहार की भाषा(अंग्रेजी) सिखाने की प्राथमिकता के बीच मातृभाषा पीछे छूट जाती है। कालांतर में उनके द्वारा यदा कदा प्रयास किए भी जाते हैं तो बच्चे स्कूल की पढ़ाई के बीच न तो समय निकाल पाते हैं और न ही उसे उतना महत्व दे पाते हैं। भौगोलिक दूरी के कारण इन बच्चों का भारत आना-जाना भी कम हो पाता है। अत: जो थोड़ी बहुत सीखते भी हैं तो जल्दी ही उसमें रुचि खोने लगते हैं। परिणामत: ब्रजभाषा जैसी बोलियों को त्याग कर जो पीढ़ी हिन्दी को मातृभाषा के रूप में सीख कर बड़ी हुई थी उनके लिए यहाँ अपने बच्चों को मातृभाषा के रूप में हिन्दी भी सिखाना दुस्साध्य हो गया है।

कई माता-पिता इस दिशा में सक्रिय प्रयास कर रहे हैं और उनके प्रयास निश्चय ही सराहनीय हैं, परंतु आज के समय का सच यही है कि मातृभाषा के रूप में बोली जाने वाली अनेक बोलियाँ तो अपने क्षेत्रों तक सीमित होकर रह गई हैं। बड़े शहरों में आकर तो उन्हें विवश होकर बड़ी भाषाओं की शरण लेनी पड़ रही है। और बड़ी भाषाएँ भी दूसरे राज्यों में जाकर धूमिल पड़ रही हैं। वहाँ संपर्क भाषा हिन्दी या अंग्रेजी ने मातृभाषाओं को स्थानापन्न कर दिया है। विदेशों में जाकर तो इन बड़ी भाषाओं पर भी भारी संकट देखा जा रहा है, जो निश्चय ही चिंता का विषय है।

-रचना चतुर्वेदी
विला नं. 144, अशोका आल मेसन, डूलापल्ली रोड
कोमपल्ली, हैदराबाद-500014

पृष्ठ संख्या 20 का शेष

की जाती है। छत धान के पुआल से बनाए जाते हैं। आर्थिक रूप से संपन्न टाइल की छत बनाते हैं। प्रत्येक आँगन में कमरा खुलता है। घर के सामने गुड़हल के फूल लगाने के शौकीन होते हैं। सूखे पेड़ की लकड़ी गृह निर्माण के लिए वरदान है। दीवारों पर उंगली, ब्रश और बांस के कूचों से चित्र बनाए जाते हैं। हस्तकला में भी इनको विशेष रुचि होती है। इसी प्रकार गेहूं की सूखी कुंडी से घर की सफाई हेतु घर की महिलाएं झाड़ू बनाती हैं और उसी से घर साफ किया जाता है। घर की महिलाएं अत्यंत उत्तम कोटि के डलिया का निर्माण खरपतवार से तैयार करती हैं, जिसकी कला देखते ही बनती है।

६) संथाल संगीत व नृत्य :- संथाली गीतों के साथ नृत्य जुड़ा रहता है। प्रत्येक पद्य रूप में अपने गढ़ नाव को छिपाए रहते हैं। संथाल गीतों को संथाल समूह गान के रूप में प्रस्तुत करते हैं। समुदाय में गीत और नृत्य के नौ प्रकार देखे जाते हैं- लागरे, पापा, विर, जन, बोहरे, डहर, बाहा, कर्म, डासे इत्यादि।

इन्हें आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त थी। बाह्य समाज के संपर्क के कारण इनकी आवश्यकताएं बढ़ती जा रही है जिससे ये संथाल आत्मनिर्भरता से परनिर्भरता की तरफ बढ़ते जा रहे हैं। इनकी आवश्यकताएं तो इतनी कम थी मानो जैसे इन्हें किसी की आवश्यकता ही नहीं।

संदर्भ :-

- सिद्धांतालंकार, सत्यव्रत, मानव शास्त्र, नई दिल्ली
- संथाली भाषा पत्रिका, गोपसपुर मालदा
- दि ट्राइब्स एण्ड कास्ट ऑफ बंगाल, बंगाल सेक्रेटेरिएट कलकत्ता 1891.

-डॉ. रेखा
जी.जी.एस.एस., रोहतक
हरियाणा

हिंगलिश और रोमन लिपि में धंसती युवा पीढ़ी

किसी भी हिन्दी-प्रेमी का दिल हिंगलिश शब्द से आहत होता ही है। साहित्यकार हों या साहित्य प्रेमी, प्रकांड विद्वान् हों या फिर हिन्दी के विद्यार्थी, हिंगलिश का उपयोग एक अजब सा दर्द देता है, दिल में कहीं मातृभाषा के लिए अपमान महसूस होता है।

कैसा विरोधाभास है कि एक ओर हिन्दी भाषा की लोकप्रियता देश-विदेश में बढ़ रही है, यह दुनिया भर में लगभग 49 करोड़ लोगों की भाषा बनकर विश्व की तीसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा बन गई है, अमेरिका जैसी महाशक्ति के राष्ट्राध्यक्ष भी 'नमस्ते इंडिया' बोलकर हमारा दिल लुभाते हैं। जबकि दूसरी ओर हमारे अपने युवा हिन्दी से दूर भाग रहे हैं।

वर्तमान समय में हमारे अधिकतर युवा हिन्दी बोल और समझ लेते हैं, किन्तु हिन्दी पढ़ने-लिखने में पीछे रह जाते हैं। बातचीत में भी तनिक शुद्ध शब्द सुनकर उलझ जाते हैं, और उस शब्द का अंग्रेजी पर्यायवाची जानना चाहते हैं। एक ओर ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में हिन्दी के शब्दों की बढ़ती संख्या हमें सुख देती है, तो दूसरी ओर यह देखकर पीड़ा होती है कि हमारे ही देश में, हिन्दी-भाषी क्षेत्र के युवाओं के शब्दकोष में हिन्दी के शब्दों का स्थान अंग्रेजी के शब्द लेते जा रहे हैं। हिन्दी में बातचीत आज के युवाओं को जितनी ही आसान और सहज लगती है, हिन्दी में लिखना-पढ़ना उनके लिए उतना ही कठिन होता जा रहा है।

स्वतंत्र लेखक होने के नाते मेरे पास भी अक्सर ऐसे अनुरोध आते हैं कि भाषा में अंग्रेजी के शब्दों का समावेश करें तो युवा समझ सकें! कुछ ऐसे युवक-युवतियों से भी संवाद हुआ, जिनका सुझाव होता है कि अपनी रचनाओं को रोमन में लिख दूँ या ऑडियो रिकॉर्ड करूँ, ताकि वे आसानी से समझ सकें।

ऐसी बातों से मन में असहजता उत्पन्न होती है! निश्चित तौर पर यह पीढ़ी हमारे विचारों से अवगत होना चाहती है, हमारी रचनाओं का रस भी लेना चाहती है, लेकिन हिन्दी पढ़ने में उन्हें कठिनाई होती है।

जैसे ही हिंगलिश और रोमन में धंसती युवा पीढ़ी की चर्चा होती है, ये युवा किंचित् अपराधबोध में भी धंसने लगते हैं। भले ही इस आरोप का समुचित उत्तर नहीं दे पाते, किन्तु यह आरोप उन्हें कहीं न कहीं हमसे, हिन्दी से कुछ और दूर ही ले जाता है। वे तुरंत अपने अंग्रेजी ज्ञान के आवरण में छुपकर आत्म-रक्षा करना चाहते हैं, और इसी प्रयास में कितनी ही बार अपनी मातृभाषा को घायल भी करते है। कारण उनकी धृष्टता नहीं। कारण केवल यह है कि वे युवा हैं, अर्थात्, वह उम्र जो विद्रोह की होती है, विरोध की होती है, क्रांति की होती है। इस उम्र में इतनी सहनशीलता नहीं होती कि आरोप सुनकर धैर्य रख सकें। परिणाम स्वरूप, अकारण विवाद ही उपजता है।

गरिमा संजय

आंकलन करें तो हम पाएँगे कि हिंगलिश और रोमन लिपि में धंसने के पीछे इन युवाओं की उतनी गलती भी नहीं है। हमारे देश में माध्यमिक शिक्षा का प्रमुख बोर्ड आज सीबीएसई है। देश के अधिकांश विद्यालय इसी बोर्ड से चालित हैं। इसके अतिरिक्त कुछ विद्यालय आईसीएसई बोर्ड या प्रांतीय बोर्ड से भी शिक्षा देते हैं। केंद्र सरकार के अधीन कार्यरत सीबीएसई बोर्ड का अनुसरण अन्य बोर्ड भी करते हैं। यद्यपि ऐसा करना उन बोर्ड के लिए अनिवार्य नहीं, किन्तु इससे उन्हें अपने विद्यार्थियों को राष्ट्रीय स्तर पर तैयार करने में सहायता मिलती है।

पिछले अनेक वर्षों से सीबीएसई बोर्ड में हिन्दी विषय वैकल्पिक बन चुका है। आठवीं के बाद बच्चों के लिए हिन्दी भाषा पढ़ना अनिवार्य नहीं रह गया है। विचारणीय है, केवल आठवीं तक की पढ़ाई से बच्चों में पर्याप्त समझ विकसित नहीं हो पाती कि वे हिन्दी में कुशल हो सकें। किसी भी भाषा में सामान्य स्तर की समझ उपजने के लिए कम-से-कम बारहवीं तक सामान्य अभ्यास आवश्यक होता है। गणित और विज्ञान के विषयों की तरह भाषा भी अभ्यास पर निर्भर करती है। घर-परिवारों में भाषा का अभ्यास केवल बातचीत तक ही सीमित होता है। लेखन और पठन के अवसर घरों में बहुत कम ही मिल पाते हैं।

पूर्व में हम सब पत्राचार के माध्यम से अपने भाषा अभ्यास को सुचारु रूप से जारी रख पाते थे, किन्तु वर्तमान डिजिटल युग में पत्राचार मात्र सरकारी दस्तावेजों तक ही सीमित रह गया है। संवाद के लिए उपलब्ध अनेकानेक विकल्पों के बीच लेखन कहीं गुम होने लगा है।

ऐसे में जिन युवाओं ने आठवीं कक्षा के बाद हिन्दी भाषा में न शिक्षा पाई और न ही लेखन के अवसर मिले, उनके लिए हिन्दी पठन और लेखन के अवसर दिनोंदिन संकुचित होते गए। ताज्जुब नहीं कि बोलचाल में वे हिन्दी के साथ अंग्रेजी शब्दों की मिलावट करने लगे, या हिन्दी लेखन के लिए देवनागरी के स्थान पर रोमन लिपि का सहारा उन्हें आसान लगने लगा।

यदि शिक्षा में कम से कम बारहवीं तक हिन्दी-भाषा को, अर्थात् सामान्य हिन्दी को ही अनिवार्य कर दिया जाता तो लगभग वयस्कता की उम्र तक उन्हें हिन्दी शब्दों के उपयोग की आदत बनी रहती, हिन्दी पढ़ने और लिखने का अभ्यास होता रहता, तो इन युवाओं की रुचि और उपयोग में हिन्दी की स्थिति निश्चित रूप से अलग

शेष पृष्ठ संख्या 34 पर

त्रिभाषा सूत्र - भावनात्मक एकीकरण और हिन्दी शिक्षण

सुरेखा शर्मा

राष्ट्रभाषा पर राष्ट्र का गौरव टिका होता है । भाषा राष्ट्र की संस्कृति, सभ्यता और उन्नति की प्रतीक भी होती है। सभी देशों की अपनी राष्ट्रभाषा होती है, लेकिन हमारे देश में राष्ट्रभाषा की समस्या अति जटिल है । हिन्दी भाषा एक ऐसी दोधारी तलवार है जो एक ओर राष्ट्र निर्माण में सकारात्मक भूमिका निभाती है, तो दूसरी ओर यह राजनेताओं के हाथ में हथियार बन जाती है । भाषाई अस्मिता से जुड़ी राजनीति के नकारात्मक स्वरूप का उदाहरण बना है तमिलनाडु । इस दक्षिणी राज्य के नेताओं द्वारा नई शिक्षा नीति के मसौदे में उस बिन्दु का विरोध किया, जिसमें स्कूली शिक्षा में त्रिभाषा सूत्र और हिन्दी के शामिल किए जाने की बात कही गई थी ।

भारत सरकार द्वारा नई शिक्षा नीति का प्रारूप जब सार्वजनिक किया गया तो तमिलनाडु में हिन्दी का विरोध किया जाना -पचास वर्ष पूर्व भारत को ले जाने जैसा है । कुछ लोगों द्वारा हिन्दी को 'थोपी' जाने वाली भाषा के रूप में व्याख्यायित करने का प्रयास किया जा रहा है। उनके अनुसार इसे उत्तर भारतीयों का षड्यंत्र बताया जा रहा है कि इससे तमिल भाषा खतरे में पड़ जाएगी। जबकि ये सारे आरोप बेबुनियाद हैं । जबकि हिन्दी थोपी जाने वाली भाषा नहीं बल्कि विश्वभर में स्वीकार्य भाषा के रूप में उभर रही है।

भारत में सदियों से अनेक भाषिक समूह रहे हैं। देखा जाए तो भारत की बहुभाषिकता के संदर्भ में ही त्रिभाषा सूत्र को देखा जाना चाहिए । जिस हिन्दी को जानने-समझने और सीखने के लिए विश्व के तमाम देश आतुर हैं, उसी हिन्दी को लेकर उसके देश के कुछ हिस्से में विरोध दिखाई देना चिन्ता की बात है । राष्ट्रीय शिक्षा नीति के मसौदे त्रिभाषा सूत्र के तहत हिन्दी को अनिवार्य बनाए जाने को लेकर विरोध किया गया । तमिलनाडु में भाषा -विवाद एक बार फिर से सुर्खियों में आ गया ।

हिन्दी संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकृत है और आशा ही नहीं पूर्णत: विश्वास है कि कुछ समय में देश की जनभाषा भी बन जाएगी । आखिरकार भाषा पाठ्यक्रम में मातृभाषा के बाद ही इसका स्थान होगा। जब तक अंग्रेजी भाषा विषय प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा का मुख्य माध्यम और केन्द्र तथा अनेक राज्यों में प्रशासन की भाषा बनी रहेगी तब तक उसको ऊँचा स्थान मिलता रहेगा ।

पब्लिक स्कूल पद्धति में अंग्रेजी का एकछत्र राज है । हिन्दी तथा भारतीय भाषाएं मात्र दिखाने के लिए पढ़ाई जा रही हैं। देखा जाए तो एक भाषा अंग्रेजी का वर्चस्व ही बढ़ रहा है । त्रिभाषा सूत्र के महत्वपूर्ण उद्देश्य, राष्ट्रीय भावनात्मक एकीकरण तथा भारतीय भाषाओं की अस्मिता आदि विस्मृत की पहचान जैसे विस्मृत कर दिए गए हैं। त्रिभाषा सूत्र है क्या पहले हमें यह समझना होगा-

त्रिभाषा सूत्र के तहत स्कूलों में छात्रों को तीन भाषाओं की जानकारी दी जानी चाहिए । हिन्दी भाषी राज्यों के छात्रों को हिन्दी, अंग्रेजी और एक आधुनिक भारतीय भाषा- जैसे बंगला, तमिल, तेलुगू, कन्नड, असमिया, मराठी आदि भाषाएँ पढ़नी होती हैं और गैर हिन्दीभाषी राज्यों में मातृभाषा के अलावा, हिन्दी और अंग्रेजी पढ़ानी थी । लेकिन ऐसा नही हुआ । त्रिभाषा सूत्र की क्रियान्वयन की कठिनाइयों पर शिक्षा आयोग(1964-66) ने विचार किया था । व्यवहारिक रूप से त्रिभाषा सूत्र की क्रियान्वयन की कठिनाइयों में मुख्य है स्कूल पाठ्यक्रम में भाषा के भारी बोझ का सामान्य विरोध, हिन्दी क्षेत्रों में एक अतिरिक्त आधुनिक भारतीय भाषा के अध्ययन के अतिरिक्त भारतीय भाषा के लिए अभिप्रेरण का अभाव, कुछ अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी के अध्ययन का विरोध तथा पाँच से छह साल तक कक्षा छठी से दसवीं तक दूसरी और तीसरी भाषा के लिए होने वाला भारी खर्च । शिक्षा आयोग के अनुसार योजना को सही तरीके से क्रियान्वित न करने से स्थिति तो बिगड़ी ही साथ ही बड़े पैमाने पर संसाधनों का अपव्यय भी हुआ है ।

जहाँ तक तीसरी भाषा का संबंध है उसे जिस स्थिति में अधिकांश छात्रों ने अध्ययन का विषय बनाया और इस प्रयोजन के लिए जिस प्रकार अपर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था की गई उनके कारण बहुत से क्षेत्रों में छात्रों को नाममात्र का लाभ पहुँचा । अब वह समय आ गया है कि सारी स्थिति पर पुनर्विचार कर स्कूली स्तर पर भारतीय भाषाओं के संबंध में नई नीति निर्धारित की जाए ।

तीन भाषाओं के अध्ययन को अनिवार्य बनाने के लिए प्राथमिक-माध्यमिक कक्षाओं से कक्षा दस तक सबसे उपयुक्त समय होता है । प्राथमिक स्तर पर छात्र की इच्छानुसार केवल एक ही भाषा मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा अनिवार्य रूप से पढ़ाई जानी चाहिए । छात्रों द्वारा पढ़ी गई तीन भाषाओं में दो भाषाएँ हिन्दी व अंग्रेजी होंगीं जो वर्तमान में देश की संपर्क भाषाएं हैं। प्रत्येक भाषाई क्षेत्र में अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं के पढ़ने वाले भी कुछ छात्र होंगे और इस तरह विचारों के परस्पर आदान-प्रदान के अनेक मार्ग खुल जाएंगे । इस लचीलेपन के कारण विभिन्न भाषाएँ बोलने वालों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान के अधिक अवसर सुलभ होंगे । हिन्दी भाषा का विरोध व अपमान करने वालों के लिए एक प्रसंग यहाँ देना उचित होगा ।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन में अपने वक्तव्य में अरूणाचल प्रदेश के राज्यपाल डाक्टर बीख डीख मिश्र ने एक संस्मरण के माध्यम से बताया कि जब श्री एम.एस. नम्बूदरीपाद केरल के मुख्यमंत्री थे तब उन्होंने अपने प्रदेश में कक्षा एक से कक्षा आठ तक हिन्दी अनिवार्य कर दिया था जब कुछ लोगों ने उनसे पूछा कि आपने ऐसा क्यों किया तो उन्होंने जो तर्क दिया, वह देश के सभी प्रदेशों के नेताओं को ध्यान में रखने योग्य है । उन्होंने कहा, कि हमारे प्रदेश की

जनसंख्या अधिक है । इतनी जनसंख्या को रोटी देना केरल के लिए संभव नहीं है। केरल के लोगों को आजीविका के लिए प्रदेश के बाहर जाना होगा दूसरे प्रदेश में हमारी मलयाली उनकी सहायता नहीं कर सकेगी। दूसरे प्रदेश में वहाँ के लोगों से वार्ता करने, संवाद करने के लिए हिन्दी ही सहायक होगी। हिन्दी के माध्यम से वह किसी भी प्रदेश में आजीविका अर्जित कर सकेगा । यही बात गाँधी जी ने भी कही थी कि हमारी गुजराती गुजरात के बाहर हमें सहायता नहीं पहुँचा सकती । हमें विशाल भारत में अपनी पहुँच बनाने के लिए अधिसंख्य जन द्वारा प्रयुक्त भाषा ही अपनानी पड़ेगी ।

जो राजनेता हिन्दी का विरोध करते है और अंग्रेजी का समर्थन करते हैं वे अपना और अपने प्रदेश के जन-जीवन को हानि पहुँचाते हैं। कोई भी राजनेता अंग्रेजी में भाषण देकर अपने प्रदेश का भी नेता नही बन सकता । उसे जन भाषा का प्रयोग करना ही पड़ेगा ।

कुछ सूत्रों के अनुसार अहिन्दी भाषी प्रदेशों में स्कूली शिक्षा में हिन्दी का अध्यापन तृतीय भाषा के रूप मे किया जा रहा है। चूंकि शिक्षा राज्य का विषय रहा है अत: त्रिभाषा सूत्र को क्रियान्वयन करने का मनचाहा अर्थ लगाया गया है । जिसमें एकरूपता नहीं है। हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं की अस्मिता को वास्तविक आघात अंग्रेजी से पहुँच रहा है । ऐसा नही है कि अंग्रेजी का अध्यापन रखने में कोई आपत्ति हो बल्कि अंग्रेजी का उपयोग अंतरराष्ट्रीय संपर्क के लिए तथा हिन्दी का उपयोग इस बहुभाषी देश में आपसी संपर्क के संदर्भ में अपेक्षित है, किंतु आपत्ति इस पर है कि अंग्रेजी को सर्वश्रेष्ठ सम्माननीय अनावश्यक दर्जा प्राप्त है । इसका एकमात्र समाधान यही है कि त्रिभाषा सूत्र को सही अर्थों व सही रूप में प्रयोग में लाया जाए।

इस पूरे विवाद को सुलझाने में कुछ हिन्दीभाषी राज्यों को भी अहम भूमिका निभानी होगी । उन्हें भी अन्य क्षेत्रीय भाषाएँ विशेष रूप से द्रविड़ परिवार की कोई भाषा सीखनी होगी । गैर हिन्दी भाषियों को हिन्दी के वर्चस्व का जो डर सताता है उसे तभी दूर किया जा सकता है जब हम भी उनकी भाषाएँ सीखें। इसके अनुसार हिन्दी भाषी राज्यों में प्रत्येक छात्र को हिन्दी और अंग्रेजी के अलावा एक अन्य भाषा आधुनिक भारतीय भाषा के रूप में सीखनी होगी और अहिन्दी भाषी विद्यार्थियों के लिए अपनी मातृभाषा और अंग्रेजी के अतिरिक्त हिन्दी का सीखना अनिवार्य होगा । भारत की बहुभाषिक संप्रेषण व्यवस्था के संदर्भ में द्वितीय या तृतीय भाषाओं के पठन-पाठन का मुख्य उद्देश्य विभिन्न भाषा-भाषी क्षेत्रों के बीच संपर्क स्थापित करना तथा राष्ट्रीय भावनात्मक एकता को बनाए रखना है। हिन्दी प्रदेशों में भी अन्य भारतीय भाषाओं की पढ़ाई शुरू होने पर इन क्षेत्रीय भाषाओं का विस्तार ही होगा ।

-सुरेखा शर्मा
सलाहकार-हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी, दिल्ली

पृष्ठ संख्या 32 का शेष

होती। वे न केवल हिन्दी का सामान्य उपयोग कर पाते, बल्कि उनमें से अनेक साहित्य का रसास्वादन कर पाते।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में उलझे युवाओं से हम यह अपेक्षा भी कहाँ तक कर सकते हैं कि वे शिक्षा से इतर हिन्दी भाषा का स्वाध्याय करें। ऐसा करना कुछेक बच्चों के लिए अपनी रुचि के कारण संभव हो भी सकता है, लेकिन व्यापक स्तर पर हरेक युवा से ऐसी अपेक्षा की नहीं जा सकती।

ऐसे में, एक विरोधी स्थिति जन्म लेती है। हम अपनी भाषा, अपने साहित्य के संरक्षण को लेकर चिंतित होते हैं, किन्तु जिस पीढ़ी ने भाषा और साहित्य का अधिक अध्ययन ही नहीं किया उसे भाषा के साथ स्वाभाविक लगाव भी कहाँ होगा? साहित्य का रस उसे कहाँ आकर्षित करेगा? साहित्य सृजन तो उसके लिए अकल्पनीय ही रह जाएगा!

हम हिन्दी भाषा के उन्नयन की आवाज जितनी भी बुलंद कर लें, अपनी सीमाओं में बंधे ये युवा हमारी आवाज समझ ही नहीं पाते। किसी भी परिवर्तन का प्रयास युवाओं के सहयोग के अभाव में कहाँ तक सफल हो सकता है?

एक और तथ्य उजागर होता है... भाषा में मिलावट को लेकर हम जितना ही कठोर रुख अपनाते हैं, युवाओं का साथ हमसे उतना ही अधिक छूटता जाता है... क्योंकि भाषा का समुचित रस न मिल पाने से वे इस विषय में अधिक भावुक नहीं हो पाते। वे सुगम, सरल मार्ग अपनाते अपनी दिशा में आगे बढ़ते जाते हैं। हमारी लड़ाई उन्हें अनिवार्य लगती है, और ये युवा हमसे, हमारी भावनाओं, हमारे विचारों से दूर होने लगते हैं।

युवाओं में हिन्दी प्रेम फिर से जागे, उनमें हिन्दी लेखन, पठन और अध्ययन का चलन बढ़े, इसके लिए पहल तो सरकारी ही आवश्यक है... सीबीएसई बोर्ड में यदि बारहवीं तक कम से कम सामान्य हिन्दी ही अनिवार्य कर दी जाए तो इस समस्या का समाधान बहुत सीमा तक किया जा सकता है।

किन्तु, जब तक ऐसा नहीं होता, युवाओं को अपने साथ जोड़े रखने के लिए हमें उनके प्रति सहिष्णु रहना होगा। वे हिन्दी से पूरी तरह से दूर हो जाए, इससे बेहतर यही है कि वे थोड़ी हिंगलिश का उपयोग भी कर लें, रोमन, का उपयोग भी कर लें... किन्तु, हिन्दी से जुड़े तो रहें।

यद्यपि यह सुझाव अत्यधिक पीड़ाकारी है, किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में अपने व्यवहार में थोड़ा लचीलापन, थोड़ी व्यावहारिकता लाकर हम युवाओं को हिन्दी के साथ बाँधे रख सकते हैं। तदुपरांत, धीमे-धीमे सकारात्मक परिवर्तन लाकर उन्हें शुद्ध हिन्दी के पठन-पाठन और लेखन की दिशा में भी उद्धृत कर सकते हैं।

-गरिमा संजय
बी-5, पंडारा रोड, नई दिल्ली-03

त्रिभाषा सूत्र और राज्यों में उस सूत्र की वास्तविक स्थिति

भारत की भाषाई विविधता देश की साहित्यिक और सांस्कृतिक समृद्धि का स्रोत है। भाषा ही संस्कृति, खान-पान, रीति-रिवाज की संवाहिका बन दो राज्यों अथवा देशों को जोड़ने का सेतु बनती है। संभवत: इसी सौहार्द और पारस्परिक सद्भावना को जगाने के लिए या यूँ कहा जाए कि भाषाओं के परिवारों को संयुक्त परिवार की शक्ल देने के लिए और सभी राज्यों को एक-दूसरे से प्रगाढ़ता पूर्वक जोड़े रखने के लिए 'त्रिभाषा सूत्र' का प्रावधान शिक्षा व्यवस्था में किया गया। विभिन्न राज्यों के मुख्यमंत्रियों द्वारा आयोजित सम्मेलन में 'त्रिभाषा सूत्र' बना और वैज्ञानिक डॉ. कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता वाली समिति द्वारा तैयार की गई 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' के अन्तर्गत 'त्रिभाषा सूत्र' को क्रियान्वित करने की सिफारिश की गई। नई शिक्षा नीति में 'त्रिभाषा सूत्र' सुनिश्चित करते हुए यह निर्णय लिया गया था कि विद्यालय में एक मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा पढ़ाई जाए, दूसरी भाषा के रूप में हिन्दी भाषी राज्यों में कोई अन्य भारतीय भाषा और गैर हिन्दी भाषी राज्यों में हिन्दी भाषा तथा तीसरी भाषा के रूप में अंग्रेजी या कोई अन्य अन्तर्राष्ट्रीय भाषा को स्थान दिया जाए।

विद्यालय विद्यार्थियों के भाषा ज्ञान का वह पड़ाव है, जहाँ माध्यमिक स्तर पर 'त्रिभाषा-सूत्र' के क्रियान्वयन से उनके हृदय में भाषा के प्रति प्रेम भाव अंकुरित होने और विकसित होने की पूरी संभावना है। 'त्रिभाषा- सूत्र' में मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा के साथ हिन्दी सिखाने की व्यवस्था के पीछे यह भावना थी कि हिन्दी संपर्क की भाषा है, पर दक्षिण भारत में उठते विरोध के स्वरों को देखते हुए उसके स्थान पर किसी भारतीय भाषा की व्यवस्था कर दी गई।

'त्रिभाषा-सूत्र' की जमीनी धरातल पर जाँच की जाए तो वस्तुस्थिति मूल भावना से अलग निराशाजनक, खोखली और भयानक दिखाई देती है । प्राय: विद्यालयों में नियमानुसार छठी से आठवीं या पाँचवी से आठवीं कक्षा तक 'त्रिभाषा सूत्र' को स्थान दिया गया है। निजी विद्यालय प्रथम भाषा के रूप में अंग्रेजी, द्वितीय भाषा के रूप में हिन्दी और तृतीय भाषा के रूप में फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश जैसी विदेशी भाषाओं का विकल्प रखते हैं। तीन या चार वर्षों में इन विदेशी भाषाओं को सीखने में वे पारंगत नहीं हो पाते और विदेशी भाषाओं को सीखने के सम्मोहन में फंस उनका हिन्दी ज्ञान भी अधूरा रह जाता है वरन् कहना न होगा कि उनकी हिन्दी भी पूरी तरह बिगड़ जाती है। निजी विद्यालय अपने निहित स्वार्थ पूर्ति के लिए, आधुनिकीकरण की चकाचौंध दिखा, अभिभावकों और छात्रों में भ्रम की स्थिति उत्पन्न कर भाषिक व्यवस्था के समक्ष गहरा संकट उपस्थित कर रहे हैं।

शकुन्तला मित्तल

वह 'त्रिभाषा-सूत्र' जो बहुभाषी राज्यों को एकता के सूत्र में पिरोने का धागा बनना चाहिए था, जिसे क्षेत्रीय बोलियों को आगे बढ़ाने का काम करना चाहिए था, भाषाई स्वाभिमान और स्पंदन जगाना चाहिए था, वस्तुत: वह केन्द्र और राज्य सरकारों के पारस्परिक संवादहीनता या सही दिशा में संवाद न होने के कारण अनेक राज्यों में भाषायी प्रतिद्वंद्विता का कारण बन गया। अपनी भाषा के कमजोर पड़ जाने का भय भी उन्हें 'त्रिभाषा-सूत्र' को सही रूप में अपनाने की अनुमति नहीं दे रहा। सभी राज्यों में अंग्रेजी का वर्चस्व इस कदर बढ़ रहा है कि राज्य सरकारें और उनके विद्यालय अंग्रेजी को स्वयं पर हावी करते जा रहे हैं। उन्हें लगता है कि अंग्रेजी से ही हमारा विकास और उन्नति हो पाएगी।

संपूर्ण देश के सभी राज्यों में 'त्रिभाषा-सूत्र' का उसी रूप में क्रियान्वयन नहीं किया गया है। विभिन्न राज्यों ने अपने-अपने, अलग-अलग तरीकों से इस सूत्र की व्याख्या कर उसे अपनाया और इसी के परिणाम स्वरूप इसके कार्यान्वयन में भी अंतर रहा। कई विद्यालयों ने इसे (3+1) सूत्र भी बना दिया। अल्पसंख्यक (भाषाई) भाषाओं को बोलने वालों के लिए 'त्रिभाषा सूत्र' चार भाषाओं वाला सूत्र इसलिए बन गया क्योंकि उन्हें मातृभाषा, प्रभावी क्षेत्रीय भाषा, अंग्रेजी और हिन्दी पढ़नी होती है। कई हिन्दी भाषी राज्यों में किसी आधुनिक भारतीय भाषा या दक्षिण भारतीय भाषा के स्थान पर संस्कृत तीसरी भाषा बन गई है। जबकि तमिलनाडु जैसे गैर हिन्दी भाषी राज्य में कहीं कहीं द्विभाषा सूत्र (तमिल और अंग्रेजी) के माध्यम से ही इस सूत्र का संचालन हो रहा है। कुछ बोर्ड और संस्थान हिन्दी या संस्कृत के स्थान पर स्पेनिश, फ्रेंच और जर्मन जैसी यूरोपियन/विदेशी भाषाओं की अनुमति देते हैं। केवल कुछ राज्यों ने ही सैद्धांतिक रूप से 'त्रिभाषा सूत्र' को स्वीकार किया है, जबकि कुछ ने इसमें अपने निजी दृष्टिकोण से कुछ समायोजन किए हैं और कुछ ने तो इसे इस सीमा तक बदल डाला कि इसका कार्यान्वयन असंभव ही हो गया।

राज्य स्तर पर 'त्रिभाषा सूत्र' का विहंगम दृष्टि से सर्वेक्षण करने पर हम पाते हैं कि पहले पुदुचेरी, तमिलनाडु और त्रिपुरा जैसे राज्य हिन्दी के शिक्षण के लिए तैयार नहीं थे पर आज तमिलनाडु, चेन्नई, केरल, आंध्र प्रदेश में हिन्दी का अध्ययन-अध्यापन द्वितीय भाषा के रूप में करवाया जा रहा है, पर इन राज्यों की शिक्षा में

शेष पृष्ठ संख्या 41 पर

भाषाई अस्मिता और हिन्दी

उर्मिला पोरवाल

अस्मिता से तात्पर्य है अपनी पहचान। 'अस्मिता' शब्द के संदर्भ में डॉ. नामवर सिंह ने कहा है कि- "हिन्दी में 'अस्मिता' शब्द पहले नहीं था। 1947 से पहले की किताबों में मुझे तो नहीं मिला और संस्कृत में भी अस्मिता का यह अर्थ नहीं है। 'अहंकार' के अर्थ में आता है, जिसे दोष माना जाता है। हिन्दी में 'आईडेंटिटी' का अनुवाद 'अस्मिता' किया गया और हिन्दी में जहाँ तक मेरी जानकारी है, पहली बार अज्ञेय ने 'आईडेंटिटी' के लिए अनुवाद 'अस्मिता' शब्द का प्रयोग हिन्दी में किया है।"1

अस्मिता के अर्थ के आधार पर भाषाई अस्मिता से तात्पर्य है- भाषा बोलने वालों की अपनी पहचान। अस्मिता के भी कई प्रकार हैं। उनमें से मनोवैज्ञानिक अस्मिता का संबंध भाषा से होता है। भाषा के महत्व को इस प्रकार समझा जा सकता है कि भाषा के द्वारा व्यक्ति की मन:स्थिति का पता लगाया जा सकता है। व्यक्ति के विचारों को जानने का प्रमुख साधन भाषा ही होती है। किसी बालक, युवक तथा बुजुर्ग की भाषा में अंतर होता है। भाषा के द्वारा उनकी सोच एवं अनुभव आदि का परिचय हमें सहज रूप में मिल जाता है। भाषा के द्वारा हम यह भी जान सकते हैं कि कोई व्यक्ति अंतर्मुखी है अथवा बहिर्मुखी है। स्पष्ट है कि संसार में प्रत्येक व्यक्ति की अपनी निजी विशेषताएँ होती है। भाषा उनमें से एक है। यह प्रमाणित हो चुका है कि प्रत्येक व्यक्ति की भाषा दूसरे से अलग हो सकती है। अत: कह सकते हैं कि किसी वर्ग, समाज एवं राष्ट्र आदि की अस्मिता उसकी भाषा में भी प्रतिबिम्बित होती है। प्रश्न यह उठता है कि बोली कि चरम पराकाष्ठा क्या है ? जब वह भाषा की उपाधि प्राप्त कर लेती है। सामान्य तौर पर कहा जाता है कि एक बोली भाषा तब बनती है जब उसका समृद्ध व्याकरण हो और जिसमें साहित्य का निर्माण संभव हो लेकिन इसे इस प्रकार भी समझा जा सकता है कि जब कोई बोली जातीय पुनर्गठन की सामाजिक प्रक्रिया के दौरान सांस्कृतिक पुनर्जागरण, राजनैतिक पुनर्गठन और आर्थिक पुनर्व्यवस्था के कारण अन्य बोलियों की तुलना में अधिक महत्व प्राप्त कर लेती है तो उसे भाषा की उपाधि प्राप्त हो जाती है।

उदाहरण के तौर पर ऐतिहासिक परिदृश्य पर दृष्टिपात करें तो 14वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी तक भाषा के रूप में ब्रज भाषा का विस्तार लगभग पूरे देश में था और इसका प्रमाण ब्रजभाषा का समृद्ध साहित्य है और यही बात अवधी, मैथिली, मेवाड़ी (राजस्थानी) आदि भाषाओं पर भी लागू होती थी।

अब यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि ब्रज,अवधी, मैथिली, मेवाड़ी आदि भाषा के उच्च आसन पर विराजमान होने के बाद फिर बोली कैसे बन गई। इसके उत्तर को इस प्रकार समझा जा सकता है कि परिस्थितियों के अनुसार भाषाओं में संशोधन परिवर्धन होता रहता है, कभी-कभी भाषा अपनी अस्मिता किसी अन्य भाषा के साथ जोड़ देती है और वह उसकी बोली बन जाती है। समय के अंतराल में ये भाषाएँ भी बोली के रूप में प्रयुक्त होने लगीं। उदाहरण के लिए देखा जाए तो मध्य काल में ब्रज साहित्यिक संदर्भ में भाषा के रूप में प्रतिष्ठित थी, किंतु आज खड़ी बोली हिन्दी की आधार भूमि है और ब्रज भाषा हिन्दी की बोली के स्तर पर आ गई है। यही स्थिति राजस्थानी, अवधी, मैथिली और खड़ी बोली पर भी लागू होती है। यहीं से भाषा और बोली का सहसंबंध निर्मित हो जाता है। इसलिए बोलियों की अस्मिता पर चिंता करना व्यर्थ है बल्कि हमारा देश बहुभाषी देश है और इस सहसंबंध से इसका महत्व विशेष रूप से बढ़ जाता है।

यह सार्वभौमिक सत्य है कि बोलियों का इतिहास हजारों वर्ष पुराना है और इनका अपना क्षेत्र भी रहा है। लेकिन यह भी सत्य है कि समाज के ऐतिहासिक विकास के साथ-साथ कोई भी बोली भाषा का दर्जा प्राप्त कर सकती है और कोई भी भाषा बोली का। वर्तमान समय में बोलियों के कुछ समर्थकों का यह विचार है कि हिन्दी भाषा से अलग होने पर ही क्षेत्रिय बोलियों की संस्कृति का विकास हो पाएगा। वास्तव में यह उनका भ्रम है।

विडंबना यह है कि भाषा को अस्मिता का सवाल बनाकर ही 1960 ई. में महाराष्ट्र को दो उपखण्डों- महाराष्ट्र तथा गुजरात में विभाजित किया गया था। पंजाब से हरियाणा को अलग करने के पीछे भी भाषा एक प्रमुख कारण थी। आज राज्यों को अलग करने के लिए जो आंदोलन चलाए जा रहे हैं, उसमें भाषा को एक प्रमुख हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। राज्यों के टूटने से समाज एवं राष्ट्र का भला होता है अथवा नहीं, यह एक अलग विचारणीय मुद्दा है, किंतु इस बात से हम इनकार नहीं कर सकते हैं कि राज्य के बँटवारे में भाषा एक प्रमुख कारक तत्त्व होती है। समझने वाली बात यह है कि भाषा में ऐतिहासिक परंपरा, जीवंतता, स्वायत्तता और मानकता ये चार लक्षण पाए जाते हैं। बोली में पहले तीन लक्षण तो होते ही हैं, किंतु मानकता लक्षण प्राय: नहीं होता। स्पष्ट है जब भाषा मानवता का लक्षण होने लगती है तो वह बोली बन जाती है। किसी भी बोली और भाषा के क्रम और वर्ग का निर्धारण करने की कसौटी भाषा विज्ञान है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से देखा जाए तो भाषा और बोली में कोई विशेष अंतर नहीं होता है।

लेकिन इस बात को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि प्रत्येक बोली की अपनी पृथक सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता होती है। और वह अस्मिता भाषा की अपेक्षा सीमित होती है।

जैसा कि उल्लेख किया गया है भाषा के चार लक्षण हैं और चौथा लक्षण मानकता है। यह सिद्ध है कि भाषा अपेक्षाकृत अधिक मानक और आधुनिक होती है जबकि बोली में सापेक्षतया अधिक विकल्प मिलते हैं। इसीलिए भाषा विभिन्न बोलियों में संपर्क भाषा का काम करती है। इसमें शब्दावली और वाक्य-संरचना में प्राय: एकरूपता मिलती है जबकि बोलियों में मानकता न होने के कारण प्राय: अनेकरूपता के दर्शन होते है। इसलिए यह प्रश्न उठ सकता है कि बोलियों के विभिन्न रूपों के कारण किसे मानक माना जाए। आज के संदर्भ में हिन्दी और उसकी बोलियाँ एक-दूसरे को परिपुष्ट और समृद्ध कर रही हैं। बोलियाँ हिन्दी की समृद्धि में सहयोग दे रही हैं। हिन्दी के विकास में खड़ीबोली के साथ-साथ भोजपुरी, अवधी, मैथिली, राजस्थानी आदि बोलियों का विशेष योगदान उल्लेखनीय है। दूसरी ओर बोलियों के आधुनिकीकरण और विकास में हिन्दी भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। हिन्दी भाषा में ही कई बोलियाँ आती है। जब कोई व्यक्ति मानक हिन्दी में बात करता है, तो उसमें उसके क्षेत्र की बोली का थोड़ा प्रभाव आ ही जाता है। उदाहरण स्वरूप समाज में निम्न एवं उच्च वर्ग की भाषा, शिक्षित एवं अशिक्षित वर्ग की भाषा, शहरी एवं ग्रामीण वर्ग की भाषा, अधिकारी एंव अधीनस्थ वर्ग की भाषा आदि को हम देख सकते हैं। यहाँ तक की स्त्री और पुरुष वर्ग की भाषा का भी इस दृष्टि से अध्ययन किया जा सकता है।

यह भी उल्लेखनीय है कि आज के भूमंडलीकरण के युग में अंग्रेजी और वह भी अमेरिकन अंग्रेजी के बाद अन्य भाषाओं की तुलना में हिन्दी आगे है, इसकी मानकता के कारण इसका क्षेत्र विस्तृत है।

भाषा-बोली के संबंध में विद्वानों द्वारा समय-समय पर विस्तार पूर्वक लिखा गया है और यह सिद्ध किया गया है कि बहुभाषी भारत में मातृभाषा की संकल्पना एकभाषी स्थिति की संकल्पना से काफी जटिल है।

बोली भाषा के चक्रव्यूह में मातृभाषा भी आती है, मातृभाषा अर्थात पालने वाले पालक की भाषा। देखा जाए तो व्यक्ति का संज्ञानात्मक बोध सबसे पहले इसी भाषा से होता है। दूसरा, उस व्यक्ति की जातीय अस्मिता संस्थागत रूप से जुड़ जाती है जिससे भाषायी चेतना के सहारे वह हम-वे के बोध से बंध जाता है। मातृभाषा की यह संकल्पना एकभाषी स्थिति पर तो लागू होती है, किंतु भारत के बहुभाषी देश होने के कारण यह संकल्पना अलग हो जाती है और वह उस पर पूरी तरह लागू नहीं होती। बहुभाषी भारत में हिन्दी एक ऐसा महाजनपद है जिसमें व्यक्ति की पालने की भाषा तो मातृबोली है किंतु जातीय अस्मिता के लिए वह महाजनपद की भाषा अर्थात हिन्दी से जुड़ जाता है। इसी कारण भारतेन्दु हरिश्चंद्र, देवकीनंदन खत्री, श्याम सुंदर दास, प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, रामचंद्र शुक्ल, राहुल सांकृत्यायन, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि अनेक साहित्यकारों की प्रथम भाषा अर्थात मातृ बोली भोजपुरी रही, लेकिन उनकी जातीय अस्मिता की भाषा सदैव हिन्दी रही है। इन साहित्यकारों का नाम हिन्दी के महिमा मंडल में ही दिखाई देते हैं।

इस प्रकार हिन्दी भाषी एक स्तर पर अपनी बोलियों से जुड़ा है और दूसरे स्तर पर अपनी भाषा हिन्दी से। उदाहरण के लिए एक बंगाली व्यक्ति स्थानीय स्तर पर बंगला का, राष्ट्रीय स्तर पर संपर्क के लिए हिन्दी का तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेजी का प्रयोग करता है। अत: संभव है कि यहाँ दो स्तरों पर टकराव की स्थिति पैदा हो जाए। दक्षिण भारत के लोगों द्वारा राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार न करने के पीछे का कारण दो स्तरों के बीच भाषा का तनाव ही है। आज भाषा के रूप में खड़ी बोली हिन्दी विभिन्न बोलियों के मध्य संपर्क भाषा का काम कर रही है तथा अन्य जनपदीय भाषाएँ ब्रज, अवधी, भोजपुरी और मगही आदि उसकी बोलियाँ कहलाती है। वहीं भाषाई अस्मिता का सवाल है। भाषा से जुड़ी सांस्कृतिक परंपरा किसी भी राष्ट्र की ताकत होती है, जो राष्ट्र निर्माण के कार्य में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

इसलिए उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि भारत की एकता एवं अखंडता के तथा भाषायी सौहार्द और हिन्दी के विकास पर विचार करते हुए अन्य बोलियों/भाषाओं को संविधान की 8वीं अनुसूची में रखना भारत राष्ट्र के लिए घातक सिद्ध होगा।

संदर्भ ग्रंथ

1. मुकुंद द्विवेदी (संपादक)-भारतीय भाषाएँ एंव राष्ट्रीय अस्मिता, पृ.43, हिन्दी अकादमी, दिल्ली।

2. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव-हिन्दी भाषा का समाजशास्त्र, पृ. 105, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली।

3. हिन्दी और क्षेत्रीय भाषाओं का पारस्परिक संबंध संपादक डॉ. विनोद कुमार।

4. हिन्दुस्तान समाचारपत्र ।

-डॉ. उर्मिला पोरवाल, बैंगलोर
बी.ए., एम.ए. (हिन्दी-साहित्य)-विश्वविद्यालय पद धारक,
पी.एच.डी. विद्यासागर (DLit-)
(मानद)

हिन्दी राष्ट्रभाषा से पहले जन-जन की भाषा बने

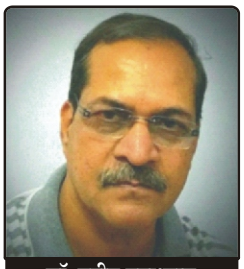
डॉ. प्रदीप उपाध्याय

किसी भी देश में राष्ट्रभाषा सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती है, स्वाभाविक तौर पर देश में वह अधिकाधिक लोगों द्वारा बोली और समझी जाने वाली भाषा होती है। सामान्यत: राष्ट्रभाषा ही किसी देश की राजभाषा भी होती है। लेकिन यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि हिन्दी को सर्वमान्य मान्यता न होने से राष्ट्रभाषा का स्थान नहीं मिल पाया है। प्रत्येक वर्ष हिन्दी दिवस पर इस बात को लेकर बहस छिड़ती ही है कि दुनिया में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा के रूप में तीसरा स्थान होने के बावजूद देश में हिन्दी को उसका यथोचित स्थान और सम्मान नहीं दिया गया है।

यहाँ देश की राजकाज की भाषा हिन्दी की बात करने के पूर्व हम भाषा, विभाषा और बोली पर भी कुछ बात कर लें। भाषा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा हम अपने विचारों को व्यक्त करते हैं और यह वाचिक ध्वनियों का प्रयोग कर संभव होता है। भाषा, मुख से उच्चारित होने वाले शब्दों और वाक्यों का समूह है जिनके द्वारा अन्तर्मन की बात अभिव्यक्त की जाती है। किसी भाषा की सभी ध्वनियों के प्रतिनिधि स्वर एक व्यवस्थित रूप में एक सम्पूर्ण भाषा की अवधारणा बनाते हैं जिसकी सहायता से किसी एक समाज, क्षेत्र या देश के लोग अपने मनोगत भाव तथा विचार आपस में प्रकट करते हैं और समझते हैं। भाषा वैचारिक आदान-प्रदान का माध्यम है। यह अभिव्यक्ति का सर्वाधिक विश्वसनीय माध्यम होकर हमारे आभ्यंतर के निर्माण, विकास, हमारी अस्मिता, सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान का भी साधन है। बिना भाषा के मनुष्य पूर्ण नहीं है ।

दुनिया भर में प्राय: हजारों भाषाएँ बोली जाती हैं । अपने समाज, क्षेत्र या देश की भाषा से अभ्यस्त होने के कारण एक दूसरे को अच्छी तरह समझ और बोल सकते हैं। हमारे देश में भी विभिन्न क्षेत्रों, प्रदेशों में भिन्न-भिन्न भाषा, विभाषा और बोलियाँ बोली जाती हैं। इनमें देश की राष्ट्रभाषा का दर्जा तो हिन्दी को नहीं दिया जा सका लेकिन वह देश की राजकाज की भाषा अवश्य ही है।

हिन्दी भाषा भाषाविज्ञान की दृष्टि से भाषाओं के आर्य वर्ग की एक भाषा है; और ब्रजभाषा, अवधी, बुंदेलखंडी आदि इसकी उपभाषाएँ या बोलियाँ हैं। भारतीय संविधान में राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों के लिए हिन्दी के अतिरिक्त 22 अन्य भाषाओं को राजभाषा का स्थान दिया गया है। भारत में 'मातृभाषा' की संख्या लगभग 1,652 है । भारत का संविधान किसी भी भाषा को राष्ट्रभाषा का दर्जा नहीं देता है, हालांकि भारत गणराज्य की केंद्र सरकार की आधिकारिक भाषा हिन्दी है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343, राजभाषा अधिनियम 1963 (यथा संशोधित 1967) के अनुसार 8वीं अनुसूची में 22 भाषाओं की सूची है जिन्हें अनुसूचित भाषाओं के रूप में संदर्भित किया गया है।

देवनागरी लिपि में लिखी गई हिन्दी भारत गणराज्य की आधिकारिक भाषा है और इसे दुनिया के सबसे व्यापक रूप से बोली जाने वाली भाषा के रूप में स्थान दिया गया है। यह बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और राजस्थान राज्य की राज्यभाषा भी है। हिन्दी का उद्भव संस्कृत भाषा से हुआ है और काल के अनुसार यह पाली, प्राकृत और अपभ्रंश से गुजरते हुए वर्तमान स्वरूप को प्राप्त हुई है। हिन्दी का उद्भव 10वीं शताब्दी में पाया जाता है। हिन्दी का साहित्यिक इतिहास 12वीं शताब्दी में उद्भूत हुआ है।

वर्तमान हिन्दी ब्रज भाषा एवं अवधी भाषा से परिवर्तित होकर इस स्वरूप में आई है। विदेशी हमलों के बाद देश में विविधतापूर्ण सभ्यता और संस्कृति के सम्मिलन के परिणामस्वरूप हिन्दी सहित अन्य देशज भाषाओं पर विदेशी भाषाओं का भी प्रभाव पड़ा है। इस परिप्रेक्ष्य में दुनिया का कोई भी देश भारत की भाषायी विविधता से साम्य नहीं रखता।

विश्व में हिन्दी जानने वालों की संख्या 1 अरब से अधिक है जबकि चीनी बोलने वालों की संख्या केवल 90 करोड़ है। हमारे देश में भाषा एक विवादास्पद मुद्दा रहा है। 1963 में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 में 'देवनागरी लिपि में हिन्दी' को भारत की आधिकारिक भाषा घोषित किया गया था। देवनागरी लिपि संभवत: विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि है। यह जैसी लिखी जाती है, वैसी ही पढ़ी जाती है। वैश्विक स्तर पर वही भाषा टिक सकती है जिसका शब्द भंडार या शब्दकोश विस्तृत हो। उस भाषा में ग्रहणशीलता भी होना चाहिए ताकि वह अपने शब्द भंडार को निरंतर बढ़ा सके। भारत में तुर्क, मंगोल, अफगान, मुगल, फ्रांसीसी, पुर्तगीज, डच और अंग्रेजों ने शासन किया । इनकी भाषा में राजकाज चला परिणामस्वरूप हिन्दी भाषा इनकी भाषाओं से प्रभावित हुई और उसका शब्द भंडार देव भाषा संस्कृत के प्रभाव से पहले ही समृद्ध था, वह और भी संपन्न होता गया। लेकिन वर्तमान में दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि अंग्रेजी ने हिन्दी सहित देशज भाषाओं का बहुत अहित किया है

अंग्रेजी के प्रभाव का दुष्परिणाम यह है कि इसका व्यापक रूप से उपयोग भारत के अभिजात्य वर्ग, नौकरशाही और सार्वजनिक एवं निजी उपक्रमों द्वारा किया जाता है। यह अपने लिखित रूप में

विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि अधिकांश दस्तावेजों के आधिकारिक संस्करण में अंग्रेजी का उपयोग किया जाता है। साथ ही अंग्रेजी साहित्य को अधिक अधिमान्यता दी जा रही है हालांकि बोले जाने के स्तर पर अंग्रेजी कम प्रचलित है और भारतीय भाषाओं का अधिक व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। हिन्दी पूर्वोत्तर और दक्षिण के प्रांतों को छोड़कर अधिकांशत: देश की बोलचाल की भाषा है। यहाँ यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक होगा कि अंग्रेजी बोलने-समझने वाले देश की जनसंख्या के दस प्रतिशत से अधिक नहीं हैं लेकिन फिर भी अंग्रेजी भाषा बोलने वालों और सुनने वालों द्वारा हिन्दी को तुलनात्मक रूप से दोयम स्थिति में ही रखा जाता है। इसके अपवाद हो सकते हैं। वैश्विक स्तर पर भाषा को स्थापित होने के लिए सबसे महत्वपूर्ण भाषा की सम्प्रेषणीय क्षमता और निज अभिव्यक्ति क्षमता आवश्यक है। यदि उसमें सम्प्रेषणीयता उच्च स्तर की नहीं है, तो वैश्विक धरातल पर भाषा का ठहरना मुश्किल है । जहाँ तक हिन्दी का सवाल है हिन्दी में ज्ञान-विज्ञान से संबंधित विषयों पर उच्चस्तरीय सामग्री का होना समय की मांग है। हालांकि इस दिशा में भी समुचित प्रयास और काफी कार्य हो रहा है लेकिन वह अभी पर्याप्त नहीं है। हमारी शिक्षा पद्धति के दोषपूर्ण होने, त्रिभाषा फार्मूले पर असमंजसपूर्ण स्थिति और अंग्रेजी के प्रति विशेष प्रेम ने हिन्दी सहित भारतीय भाषाओं का अहित किया है। हिन्दी की दुर्दशा के लिए हिन्दी भाषी स्वयं उत्तरदायी हैं। बावजूद इसके हिन्दी का प्रचार-प्रसार और विकास निरंतर जारी है।

तकनीकी विकास के परिणामस्वरूप इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और सोशल मीडिया ने हिन्दी भाषा का विकास और प्रचार-प्रसार में समुचित योगदान दिया है । हालांकि हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि हिन्दी के विकास के लिए हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के प्रति हमें मित्रवत होना होगा ताकि अंग्रेजी की अनिवार्यता के दुराग्रह से मुक्त हो सकें। वैसे हम इस बात से इंकार नहीं कर सकते कि अंग्रेजी अंतर्राष्ट्रीय भाषा है और किसी भाषा से द्वेष भाव नहीं रख सकते। उसकी अपनी उपयोगिता है लेकिन यह हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं की उपेक्षा की शर्त पर नही। केंद्र सरकार एवं कई राज्य सरकारों द्वारा हिन्दी के प्रचार-प्रसार का कार्य तो किया ही जा रहा है लेकिन यह अभी उतना कारगर नहीं है जितना सामाजिक एवं साहित्यिक स्तर पर कई संस्थाएँ सक्रियता पूर्वक इस कार्य में संलग्न है। हिन्दी में काफी लिखा भी जा रहा हो और प्रकाशन भी बहुत हो रहा है लेकिन पाठक वर्ग की कमी से भी हिन्दी साहित्य जूझ रहा है।

अब बात करें संविधान की 8वीं अनुसूची में भाषाओं को सम्मिलित किये जाने की तो यह दिशाहीन होड़ है जिसमें अनावश्यक रूप से समय -समय पर विभिन्न आंदोलनों के द्वारा द्वेष भाव में अभिवृद्धि ही की गई। संविधान की आठवीं अनुसूची में स्थान प्राप्त कर लेने मात्र से भाषाओं के विकास की बात कर लेना बेमानी है। स्थानीयता, क्षेत्रीयता और भाषायी आधार पर राजनीति और साहित्यिक प्रतिद्वंदिता उचित नहीं है । विडम्बनापूर्ण स्थिति यह है कि हिन्दी को सर्वाधिक क्षति हिन्दी भाषियों से ही हुई है । हिन्दी को लेकर स्वयं के हिन्दी-प्रेमी होने का ढिंढोरा पीटनेवाले व्यक्तियों और संस्थाओं द्वारा हिन्दी का उतना भला नहीं किया गया जितना वास्तविक प्रयास कर करना चाहिए था। हिन्दी का अहित विरोध की राजनीति के कारण अधिक हुआ है। वैसे सभी भाषाओं को फलने-फूलने के यथोचित अवसर बिना किसी भेदभाव के उपलब्ध करवाए जाना चाहिए और इस बात का भी विवेकपूर्ण विचार किया जाना चाहिए कि हिन्दी सम्पूर्ण देश की भाषा है । न तो उसे किसी पर थोपा जाना चाहिए और न ही अन्य पक्ष द्वारा उसका विरोध किया जाना चाहिए। इस बात पर भी विवेकसम्मत सहमति होना चाहिए कि राज-काज चलाने के लिए जिस भाषा को अधिसंख्यक लोग समझते हैं उसे राष्ट्रभाषा होना ही चाहिए। विदेशी शासकों ने अपनी भाषा को गुलाम देश की जनता पर थोपा और वे स्वतंत्रता के बाद भी देशज भाषाओं की उपेक्षा कर प्रचलित रही, यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है।

देश में विभिन्न क्षेत्रों की अपनी जितनी भी भाषाएँ, बोलियाँ हैं वे सभी देश की अपनी भाषाएँ हैं उनमें आपस में श्रेष्ठता का दुराग्रह कैसा, उनका एक-दूसरे से विरोध भी निरर्थक है। हिन्दी बिना किसी के समर्थन और विरोध के फलती-फूलती रहेगी यदि हिन्दी भाषी स्वयं यह ठान लें। हिन्दी को यदि उसका यथोचित स्थान और सम्मान हमें देना है तो किसी आंदोलन के स्थान पर उसके शब्द सामर्थ्य और अभिव्यक्ति सामर्थ्य को बढ़ाना होगा। इसके लिए ज्ञान-विज्ञान के हर क्षेत्र में हिन्दी का प्रयोग किया जाए, उसका साहित्य सरलतम भाषा में उपलब्ध करवाया जाए। साथ ही शासन-प्रशासन स्तर पर उसे अधिमान्यता के साथ प्राथमिकता भी दी जाए। हिन्दी के माध्यम से वार्तालाप, पत्राचार, शिक्षण, अध्ययन आदि के लिए आगे आना होगा। हिन्दी माध्यम वालों की रोजगार क्षमता भी बढ़ाना होगी। हिन्दी में हर विषय पर उत्कृष्ट पुस्तकों की आवश्यकता है, विद्वतजनों को इस दिशा में आगे आना होगा और शासन उन्हें प्रोत्साहित करे। हिन्दी में मूल शोध कार्य की भी जरूरत है। तकनीकी, चिकित्सा, यांत्रिकी, विज्ञान और अनुसंधान क्षेत्र में हिन्दी भाषा में गुणवत्तापूर्ण साहित्य की दिशा में अग्रसर होना जरूरी है। जब तक हिन्दी को हम अन्य भाषाओं मुख्य रूप से अंग्रेजी से बीस साबित नहीं कर देते तब तक उसके सम्मान की अपेक्षा नहीं कर सकते।

यहाँ यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक होगा कि हम प्रतिवर्ष 14 सितम्बर को हिन्दी दिवस के रूप में मनाते हैं। 14 सितंबर 1949

शेष पृष्ठ संख्या 41 पर

भारत में मातृभाषा शिक्षा की प्रासंगिकता

सुजाता भट्टाचार्य

मातृभाषा को परिभाषित करने के लिए हमें सर्वप्रथम इसके शाब्दिक अर्थ को समझना होगा। मातृभाषा अर्थात माता की भाषा। यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि शिशु की मातृभाषा उसकी माता की भाषा होती है जिसे वह माता के गर्भ में ही सीख लेता है। इसी संदर्भ मे कई वैज्ञानिकों ने अपने शोध द्वारा यहाँ तक कह दिया है कि जब बच्चा जन्म लेता है तब वह अपनी मातृभाषा के अनुरूप ही क्रंदन करता है। यही कारण है कि अधिकांश विचारक बच्चों को उनकी मातृभाषा में शिक्षा देने की बात करते हैं।

मातृभाषा का प्रत्येक के जीवन में बहुत महत्व है। यही कारण है कि बांग्लादेश में कुछ लोगों ने अपनी मातृभाषा के लिए अपने प्राण तक त्याग दिए। अपने देश, भारत में भी असम के एक विद्वान ने भी अपनी मातृभाषा के लिए लड़ाई लड़ी।

हमारे देश के संविधान निर्माता डॉ. अंबेडकर का भी दृढ़ विश्वास था कि देश के बच्चों को बेहतर शिक्षा देने से ही देश की उन्नति होगी। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि क्या आज के बच्चों को बेहतर शिक्षा दी जा रही है? दरअसल कोई भी बच्चा केवल अपनी मातृभाषा में ही बेहतर शिक्षा ग्रहण करता है।

मातृभाषा के महत्व को विश्व स्तर पर स्थापित करने के लिए बांग्लादेश ने विश्व में 1919 में 21 फरवरी को मातृभाषा दिवस की घोषणा की । जिसे सन् 2000 में यूनेस्को ने आरम्भ किया। उनके महानिदेशक ने अपने भाषण में अध्ययन, आत्म सम्मान व स्वाभिमान का स्तर सुधारने में मातृभाषा में छात्रों को शिक्षा देने की अनिवार्यता को माना ।

पूरे विश्व में भारत 780 भाषाओं से समाहित होने के कारण विश्व में सबसे अधिक भाषाओं के पायदान पर दूसरे स्थान पर है। वहीं इस पायदान में प्रथम स्थान पापुआ न्यू गिनी है जिसकी 839 भाषाएँ हैं। इस तथ्य से यह विदित होता है कि जिस प्रकार भारत खानपान, ऋतु, संस्कृति आदि में विविधता लिए हुए है उसी प्रकार उसकी भाषाओं की विविधता सर्वविदित है। किन्तु आज भारत की इस धरोहर को बचाना लगभग असम्भव हो गया है ।

भारत एक ऐसा देश बन गया है जहाँ विदेश मोह के कारण विदेशी भाषाओं का बोलबाला हो गया है। यहाँ अपनी मातृभाषा को कोई महत्व नहीं दिया जा रहा है, प्रत्येक प्रांत की अपनी समृद्ध मातृभाषा व संस्कृति है जिसे लगभग नकारा जा रहा है।

मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने के लिए प्रत्येक राज्य को ठोस कदम उठाना होगा क्योंकि हमारे यहाँ के आंचलिक प्रांतों की मातृभाषा जानने वाले छात्रों के लिए विदेशी भाषाओं में शिक्षा ग्रहण करना लगभग असम्भव है। ऐसे छात्रों को विदेशी भाषा में अध्ययन के लिए विवश करके उनके नैसर्गिक गुणों का बलिदान दिया जा रहा है।

जो छात्र अपनी मातृभाषा में शिक्षा ग्रहण ना करके विदेशी भाषाओं में शिक्षित हो रहे हैं, उनकी मौलिक चिंतन की आहुति देकर वे केवल विदेशी चिंतन का अनुसरण करते हैं।

आज भारतीय समाज में छात्रों की ऐसी सोचनीय अवस्था है जिसके अंतर्गत वे स्वयं को किसी भी भाषा में दक्ष नहीं कर पा रहे हैं, एक तरफ मातृभाषा का पाठ्यक्रम में सीमित स्थान, दूसरी तरफ विदेशी भाषाओं का शिक्षा में जबरदस्ती थोपा जाना । शिक्षा में मातृभाषा के अभाव में छात्र अपने मन की बात पूरी तरह व्यक्त करने में असमर्थ हैं तथा विदेशी भाषाओं का सीमित ज्ञान भी उन्हें ना तो मातृभाषा में दक्ष बनाता है और न ही विदेशी भाषा में। अतः आज प्रत्येक छात्र भाषा के सर्वोच्च स्तर को नहीं छू पा रहा है। कुछ दशक पूर्व छात्र प्राथमिक कक्षाओं में अपनी मातृभाषा की शिक्षा ग्रहण करते थे तत्पश्चात अन्य भाषाओं को भी पढ़ते-सीखते थे।

यदि भारत में छात्रों को मातृभाषा में शिक्षित करना है तो कुछ विशेष बातों का ध्यान रखना होगा तथा प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा को भी स्थानीय मातृभाषा पर आधारित करना होगा। उदाहरण के तौर पर आदिवासी क्षेत्रों में यदि छात्रों को शिक्षित कर उनको अपने विचार व्यक्त करने की आजादी दी जाए तो वे अपने मौलिक विचारों को दुनिया के समक्ष तभी ला पाएंगे जब उन्हें उनकी अपनी मातृभाषा में शिक्षा दी जाए । अन्यथा वे शिक्षा से ही दूर हो जाएंगे।

कई आलोचकों का यह कथन कि मातृभाषा में शिक्षा देने पर छात्र विश्व के अन्य ज्ञान की बातों से अनभिज्ञ रह जाएंगे, इसके लिए शिक्षा में विदेशी भाषाओं की पुस्तकों विभिन्न स्थानीय भाषाओं में अनुवाद करने से, इस समस्या का समाधान हो सकता है। साथ-साथ देश की विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं का माध्यम भी स्थानीय भाषा व अंग्रेजी भाषा होनी चाहिए जिससे अधिक से अधिक छात्र, जो कुशाग्र बुद्धि हों तथा विदेशी भाषा न जानने के कारण इन परीक्षाओं से दूर रहते हैं। वे भी बढ़-चढ़ कर न केवल सम्मिलित होंगे वरन सफल भी होंगे।

सभी को त्रिभाषा सूत्र का समर्थन करना चाहिए क्योंकि ऐसा करके देश में शिक्षा के माध्यम के रूप में स्थानीय भाषा अर्थात

छात्रों की मातृभाषा हिन्दी, जो राजभाषा है और भारत देश के विभिन्न राज्यों के शिक्षित-अशिक्षित वर्गों में आपसी विचारों के आदान-प्रदान में प्रमुख भूमिका निभाती है। इसी प्रकार अंग्रेजी जो इस वैश्विक युग में संपूर्ण विश्व को एक परिवार के रूप में आगे ला रही है। अत: दोनों भाषाओं के तालमेल से सबका भला संभव है। साथ ही प्रत्येक राज्य की भाषा भी सम्मिलित की जानी चाहिए। इस प्रकार भारत में मातृभाषा को महत्व देने पर, सभी छात्रों के जीवन में सरलता तथा रचनात्मकता की वृद्धि होगी। इतना ही नहीं आज जो छात्र भाषा संबंधी विकार से ग्रस्त हैं उसका भी समाधान होगा। अपनी मातृभाषा को पीछे ढकेल कर और ये तो अपनी भाषा है, कह कर आज लोग मातृभाषा का अपमान कर रहे हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि अपनी अर्थात मातृभाषा, ना तो वहीं अपनी बनी रह पा रही है और विदेशी भाषा तो वास्तव में विदेशी है जिसमें चाह कर भी व्यक्ति विशेष अपने संपूर्ण विचारों को व्यक्त करने में असमर्थ हैं। यहाँ एक उदाहरण हमारे देश के प्रथम नोबेल पुरस्कार विजेता कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर का है, जो हमारे लिए मार्गदर्शक हैं जिनकी अधिकांश काव्य रचनाएँ उनकी मातृभाषा बांग्ला में है। उनके मर्मस्पर्शी भावों को विश्व ने समझा और उसे सर्वोच्च सम्मान दिया। सार तत्व यह है कि मातृभाषा किसी भी प्रकार कमतर नहीं है, अत: हमें अपनी-अपनी मातृभाषा पर गर्व करना चाहिए और इसके संवर्द्धन के लिए दृढ़ संकल्प होकर आगे बढ़ना चाहिए ।

-सुजाता भट्टाचार्य
विद्यालय : सेंट ग्रिगोरियस स्कूल, द्वारका, दिल्ली
निवास : डी-268, गली नंबर-54
महावीर इनक्लेव पार्ट-3 दिल्ली-51

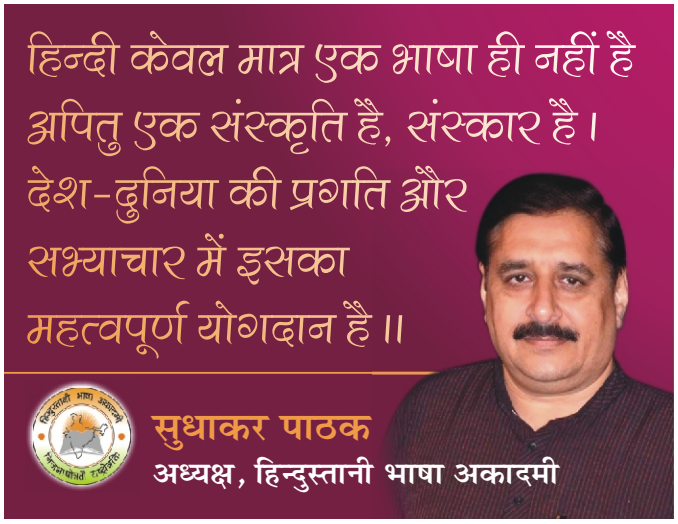

पृष्ठ संख्या 35 का शेष

हिन्दी का स्तर काफी कमजोर है। गोवा में कक्षा 5 से 10 तक हिन्दी अनिवार्य कर दी गई है। नागालैंड में हिन्दी को तृतीय भाषा के रूप में स्थान दिया गया है, पर उसका मूल्यांकन अनिवार्य नहीं है। मिजोरम में 'त्रिभाषा सूत्र' में कक्षा 5 से 8 तक पाठ्यक्रम में हिन्दी को अनिवार्य रखा गया है।

इन सभी राज्यों में 'त्रिभाषा सूत्र' की व्यवहारिक स्थिति कुछ विशिष्ट बिंदुओं की ओर ध्यान केंद्रित करती है कि राज्यों का अहं और राजनीति भी इसे ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं करने देती। इसी के साथ कई राज्यों के पास शिक्षकों और शिक्षण सामग्रियों के प्रावधान हेतु पर्याप्त संसाधन नहीं होते, अतएव वे 'त्रिभाषा सूत्र' को बदल-फेर कर अपनाते हैं और इसीलिए उनके अध्ययन की अवधि में भी अंतर रहता है। यदि आज भी इस सूत्र पर पूर्वाग्रहों से मुक्त हो कर पारस्परिक सद्भावना और एकता से, सही इच्छा शक्ति के साथ काम किया जाए तो यह 'त्रिभाषा सूत्र' समस्त भारत के लिए वरदान साबित हो सकता है। केन्द्र, राज्य की सरकारों और विद्यालय संस्थान के अधिकारियों से 'त्रिभाषा सूत्र' की सफलता हेतु तल्लीनता और मनोयोग से मिल कर काम करने की अपेक्षा है ।

-शकुन्तला मित्तल

पृष्ठ संख्या 39 का शेष

को संविधान सभा ने एक मत से निर्णय लिया था कि हिन्दी ही भारत की राजभाषा होगी और तभी देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि इस दिन के महत्व को देखते हुए हर साल 14 सितंबर को हिन्दी दिवस मनाया जाए। इसके पूर्व वर्ष 1918 में महात्मा गाँधी ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन में हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने की बात कही थी। गाँधी जी ने हिन्दी को जनमानस की भाषा भी कहा था। वास्तव में यह जनमानस की भाषा है।

हिन्दी दिवस मनाने का मुख्य उद्देश्य भी वर्ष में एक दिन इस बात से लोगों को रूबरू कराना है कि जब तक वे हिन्दी का उपयोग पूरी तरह से नहीं करेंगे तब तक हिन्दी भाषा का विकास नहीं हो सकता है। इसके लिए सभी को एक जुट होकर हिन्दी के विकास को नए आयाम तक पहुँचाना होगा और यह तभी हो सकता है जब हिन्दी जन-जन की भाषा बने, जनमानस की भाषा बने। आवश्यकता इसके ईमानदार प्रयास की है तभी हम हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने की कल्पना कर सकेंगे।

-डॉ. प्रदीप उपाध्याय
16, अम्बिका भवन, उपाध्याय नगर,
मेंढ़की रोड, देवास (म.प्र.)

महात्मा गाँधी का राष्ट्रभाषा-दर्शन

प्रो. हरीश कुमार शर्मा

महात्मा गाँधी का हिन्दी-प्रेम सर्वविदित ही है। उनका यह हिन्दी-प्रेम वस्तुतः भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में था । वे हिन्दी के ऐसे प्रबल पक्षधर थे कि उन्होंने स्वराज और हिन्दी को एक करके देखा था। हिन्दी के बिना वह भारत की एक आजाद राष्ट्र के रूप में कल्पना अधूरी मानते थे। उन्होंने हिन्दी के प्रश्न को स्वराज्य का प्रश्न बना लिया था और यहाँ तक कहा था कि हिन्दी के बिना स्वराज निरर्थक है।

स्वराज और स्वावलम्बन-राष्ट्रीय जीवन से जुड़े राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के ये दो महत्त्वपूर्ण सूत्र थे जिनको लेकर वे आजादी की लड़ाई में सक्रिय थे। स्वराज और स्वावलम्बन की उनकी इस महत्वाकांक्षा में स्वदेशी और स्वभाषा की बड़ी भूमिका थी। स्वराज को मात्र हासिल कर लेना भर नहीं, स्वदेशी पद्धति से राष्ट्र को सशक्त और आत्मनिर्भर बनाना भी उनके अभियान का हिस्सा था। अंग्रेज भारत पर राज कर रहे थे । उनके राज से मुक्ति पाकर स्वराज तभी भारत में अपने वास्तविक रूप में प्रतिलित हो सकता था, जबकि वह स्वदेशी पद्धति एवं तकनीक को अपनाकर आता और इस स्वदेशी मॉडल का स्वराज पाने की ख्वाहिश बिना स्वभाषाओं को अपनाये और महत्व दिये नहीं पूरी हो सकती थी। गाँधी जी इस बात को अच्छी तरह से समझते थे, इसलिये वे इस पर इतना जोर देते थे। भले कुछ लोगों के लिये उस समय भी भाषा का प्रश्न उतना महत्वपूर्ण नहीं रहा हो और आज तो बहुत लोगों के लिये यह और भी अप्रासंगिक हो गया है, पर गाँधी जी के लिये यह बहुत महत्वपूर्ण था, इसे उन्होंने बार-बार समझाने की कोशिश भी की थी।

भारत के राजनेताओं में गाँधीजी ने वास्तविक स्वराज को भारत में लाने में भारतीय भाषाओं एवं राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के महत्व को जितनी संजीदगी के साथ महसूस किया था और इसका प्रबल समर्थन किया था उतना किसी दूसरे ने नहीं किया, यह कहा जा सकता है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित कराने को तो जैसे उन्होंने अपने जीवन का मिशन बना लिया था और तदनुरूप विराट अभियान चलाया था। इसलिये उन्हें जहाँ कहीं भी मौका मिला, उन्होंने राष्ट्रभाषा हिन्दी के पक्ष में पुरजोर तरीके से अपनी बात रखी। आजादी की लड़ाई में उतरने के साथ-ही-साथ उन्होंने इस बात को अच्छी तरह से समझ लिया था कि इस लड़ाई को जीतने तथा बाद में इसके वांछित परिणाम पाने के लिये भारतीय भाषाओं को प्रतिष्ठा दिलाना कितना आवश्यक है और भारत को एक सूत्र में बांधने, उसकी एकजुटता, अखण्डता तथा स्वाभिमान को बनाये और बचाये रखने तथा उसकी सर्वांगीण उन्नति का पथ प्रशस्त करने के लिये एक राष्ट्रभाषा का होना कितना आवश्यक है।

वे इस बात को लेकर भी निरन्तर सजग थे कि भारत की आजादी उसमें निवास करने वाले किस वर्ग के लिये आवश्यक है और यह वर्ग था भारत की उस बहुसंख्यक सामान्य जनता का जो अभावग्रस्त, शोषित, पीड़ित, दलित और निरक्षर थी। साधन-सम्पन्न उच्च वर्ग को तो अंग्रेजी राज से भी कोई विशेष परेशानी न थी, वह तो और मजे में ही था। इसलिये उसमें से एक बड़ा तबका तो अंग्रेजी राज का समर्थक ही था। गाँधी जी ने देश भर में घूम-घूम कर दरिद्रनारायण से सीधे साक्षात्कार किया था और भारत के उस सामान्य जन के दु:ख-दर्द का अनुभव किया था जो उनकी एक आवाज पर भीड़ बनकर लाठी-डंडा, गोली खाने के लिये बाहर निकल पड़ता था। उन्होंने उसकी उन अपेक्षा-आकाँक्षाओं को भी भली-भाँति महसूस किया था जो उसने आजादी, आजाद भारत और उसके नेतृत्वकर्त्ता महात्मा गाँधी से लगा रखी थीं। असली आजादी की जरूरत इसी भूखे-नंगे, दरिद्र, अशिक्षित और निरक्षर वर्ग को थी, जो अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा बनाये रहकर पूरी नहीं हो सकती थी, न हुई । इसलिये उन्होंने स्पष्ट तौर पर यह कहा था कि- ''अगर स्वराज अंग्रेजी बोलने वाले भारतीयों का और उन्हीं के लिये होने वाला है तो बेशक अंग्रेजी ही राष्ट्रभाषा होगी। लेकिन अगर स्वराज करोड़ों भूखों मरने वालों, करोड़ों निरक्षर भाई-बहनों और दलितों व अन्त्यजों का हो और इन सबके लिये होने वाला हो, तो हिन्दी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है।''

महात्मा गाँधी हिन्दी की जिस रूप में या जिस कारण से इतनी प्रतिष्ठा चाहते थे, वह राष्ट्रभाषा हिन्दी थी जिसे वे किसी एक प्रान्त या अनेक प्रान्तों की भाषा के रूप में न देखकर सम्पूर्ण देश की भाषा के रूप में देख रहे थे। वे चाहते थे कि एक सम्पूर्ण और सम्प्रभु राष्ट्र के रूप में आजाद भारत की एक अपनी राष्ट्रभाषा हो, जो उसके निवासियों के भीतर गौरव और स्वाभिमान का भाव भर सके। देश में प्रचलित भिन्न-भिन्न भाषा और संस्कृतियों में समन्वय स्थापित कर सके। एक क्षेत्र के नागरिक का दूसरे सुदूरवर्ती क्षेत्र के नागरिक से सम्पर्क जोड़ सके और देशवासियों में पारस्परिक सम्बन्धों का स्नेह-सूत्र बन सके। देश की स्मृति, संस्कृति, इतिहास और गौरव को अक्षुण्ण रख सके। उन्हें राष्ट्र की चिन्ता थी। राष्ट्रीय एकता और अखण्डता की चिन्ता थी। देश की जनता हीनत्व भाव से उबरे और उसमें स्वाभिमान का भाव भरे, इसकी चिन्ता थी। देश

अपनी भाषा में बोले और अपने तरीके से अपना विकास करे, इसकी चिन्ता थी। इसके लिये वे बहुभाषी देश भारत की एक राष्ट्रभाषा का होना आवश्यक मानते थे और इस हेतु उन्होंने हिन्दी को उपयुक्त पाया था । इस कारण से उन्हें हिन्दी की चिन्ता थी। राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को उपयुक्त पाने की वजह उसकी भाषिक श्रेष्ठता या एकाधिक प्रान्तों की भाषा होना ही नहीं था, अपितु देश के हर कोने में शताब्दियों से चला आ रहा उसका थोड़ा या बहुत प्रचलन इसका कारण था।

गाँधी जी का हिन्दी-प्रेम नि:स्वार्थ था, राष्ट्रहित में था। राष्ट्रभाषा-सम्बन्धी उनकी चिन्ता देश की बहुसंख्यक आबादी के लिये थी। इसलिये वे देश को देशभाषाओं के माध्यम से शिक्षित करने और स्वदेशी मॉडल पर आधारित देश का विकास करने के पक्ष में थे। उन्होंने हिन्दी के भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने का स्वप्न देखा था और वे इसे हकीकत में बदलते देखना चाहते थे। पर, दुर्भाग्य से वे इसे हकीकत में बदलवाने के लिये जीवित नहीं रह पाये। यदि आजाद भारत में जिन्दगी के कुछ वर्ष उन्हें मिले होते तो शायद आज के भारत की तस्वीर कुछ और होती और राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का विकास भी कुछ और ही रूप में हुआ होता, क्योंकि उनके लिये इस बहाने का कोई मतलब नहीं था कि भारतीय भाषाएँ सक्षम नहीं हैं। वस्तुत: यह भी उन्हीं अंग्रेजों और अंग्रेजी मानसिकता वाले लोगों की एक सुनियोजित चाल थी। यह वर्ग तो यह भी नहीं मानता था कि भारत के लोग भारत का शासन संभालने के काबिल हैं। फिर भी आखिर भारत के लोगों ने भारत का शासन चलाकर दिखाया ही ! ऐसे ही अगर हिन्दी को राष्ट्रभाषा और अन्य भारतीय भाषाओं को राष्ट्रीय भाषाएँ बनाने का फैसला आजादी के तुरन्त बाद ही ले लिया गया होता, तो कोई कारण नहीं था कि वे अपने उद्देश्य में विफल होतीं। महात्मा गाँधी इस सोच का खण्डन करते थे और ऐसी हीनत्व-वृत्ति की बातें करने वालों को विभिन्न मंचों से उन्होंने लताड़ा था। 29 मार्च, 1918 को इन्दौर के टाउनहॉल में हुए हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आठवें अधिवेशन में सभापति के रूप में बोलते हुए उन्होंने कहा था कि ''हम पर और हमारी प्रजा के ऊपर एक बड़ा आक्षेप यह है कि हमारी भाषा में तेज नहीं है। जिनमें विज्ञान नहीं है, उनमें तेज नहीं है। जब हममें तेज आयेगा, तभी हमारी प्रजा में और भाषा में तेज आयेगा। विदेशी भाषा द्वारा आप जो स्वातन्त्रय चाहते हैं, वह नहीं मिल सकता, क्योंकि उसमें हम योग्य नहीं हैं।''

इससे पहले सन् 1916 में ही बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के उद्घाटन समारोह में दिये गये अपने व्याख्यान द्वारा वे हलचल मचा चुके थे। यहाँ उन्होंने अंग्रेजी में चलने वाली कार्यवाही की तीखी आलोचना की थी। इसी अवसर पर अंग्रेजी मानसिकता वालों की काफी लानत-मलानत करते हुए उन्होंने कहा था- ''हमारी भाषा पर हमारा ही प्रतिबन्ध है और इसलिये यदि आप मुझसे कहें कि हमारी भाषाओं में उत्तम विचार अभिव्यक्त किये ही नहीं जा सकते तब तो हमारा संसार से उठ जाना ही अच्छा है। क्या कोई व्यक्ति स्वप्न में भी यह सोच सकता है कि अंग्रेजी भविष्य में किसी भी दिन भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है।'' हा हन्त ! जिस बात को गाँधी जी के हिसाब से कभी किसी के द्वारा सपने में भी नहीं सोचा जा सकता था, वह आज के भारत का लगभग यथार्थ बन चुकी है। सन् 1928 में गुजरात में दिये गये अपने एक भाषण में भी बापू ने कहा- ''हम उस 'अंग्रेजी' भाषा का काम चलाऊ ज्ञान प्रदान कर सकते हैं। लेकिन हम मातृभाषा की उपेक्षा नहीं कर सकते। वह तो राष्ट्रीय आत्महत्या होगी...हमें उसे समृद्ध करना ही होगा और इस योग्य बनाना होगा कि वह सभी प्रकार के विचारों तथा भावों को अभिव्यक्त कर सके।''

हिन्दी न उनकी मातृभाषा थी, न प्रान्तीय भाषा और न वे प्रारम्भ से ही उसमें पारंगत थे बल्कि विशेष पारंगत तो वे उस अंग्रेजी में थे जिसमें उन्होंने विदेश जाकर अपनी बैरिस्टर की डिग्री हासिल की थी और जिसके बूते अफ्रीका में बरसों तक वकालत की थी। फिर भी आजादी के बाद बी.बी.सी. के संवाददाता को उन्होंने अंग्रेजी में सन्देश देने से मना कर दिया और अधिक आग्रह करने पर यहाँ तक कह दिया कि 'दुनिया से कह दो कि गाँधी अंग्रेजी नहीं जानता।' किन अरमानों और भावी राष्ट्र की किस कल्पना को लेकर उन्होंने यह बात कही होगी, इसे समझना किसी के भी लिये कोई बहुत कठिन काम नहीं है। पर, आजादी के बाद क्या हुआ ? उसी अंग्रेजी के मोहजाल में हम फंसते गये । आज भारत में यह स्थिति है कि प्रबुद्ध वर्ग की किसी सभा-सोसाइटी में हिन्दी की ही नहीं, हिन्दी में तक बात करते डर लगता है। जरा आपने उसके पक्ष में बात करनी शुरू की कि लोगों की बेचैनी बढ़नी शुरू हुई। हिन्दी की बात करने मात्र से ऐसे लोगों को लगने लगता है कि 'उनकी' अंग्रेजी का विरोध हो रहा है। जबकि स्थिति ऐसी बिल्कुल नहीं है। यह भी लोगों को भ्रमित करने के लिये जान-बूझकर किया जाता है और ऐसे अभिप्राय निर्मित कर सुनियोजित ढंग से इसका मिथ्या प्रचार किया जाता है।

वास्तविकता तो यह है कि हिन्दी के पक्ष में खड़े होने का मतलब न तो अंग्रेजी का विरोध है और न किसी अन्य विदेशी भाषा का तथा किसी भारतीय भाषा के विरोध की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। अंग्रेजी का विरोध वहीं तक है जहाँ तक वह भारतीय भाषाओं का हक छीनकर राष्ट्रभाषा या राजभाषा के रूप में भारतीयों की अनिवार्यता बना दी जाती है, उन पर बोझ की तरह लाद दी जाती है। ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के लिए उसकी उपयोगिता पर कभी किसी ने प्रश्न चिह्न नहीं लगाया। महात्मा गाँधी

भी उसकी इस रूप में उपयोगिता को स्वीकार करते थे। सन् 1918 के इन्दौर अधिवेशन में ही उन्होंने कहा था कि ''कहना आवश्यक नहीं कि मैं अंग्रेजी भाषा से द्वेश नहीं करता हूँ। अंग्रेजी साहित्य-भण्डार से मैंने भी बहुत रत्नों का उपयोग किया है। अंग्रेजी भाषा की मार्फत हमें विज्ञान आदि का खूब ज्ञान लेना है। अंग्रेजी का ज्ञान भारतवासियों के लिये बहुत आवश्यक है। लेकिन इस भाषा को उसका उचित स्थान देना एक बात है, उसकी जड़ पूजा करना दूसरी बात है।''

जो लोग भाषा के प्रश्न को महत्वपूर्ण नहीं मानते, वे कहते हैं कि क्या फर्क पड़ता है? हिन्दी न सही, अंग्रेजी सही ! बहुभाषी देश भारत में पारस्परिक संवाद कायम करने एवं राजकाज चलाने को एक भाषा ही तो चाहिए । फिर वह चाहे हिन्दी हो या अंग्रेजी ! लेकिन फर्क पड़ता है और यह फर्क पड़ता है इसलिये, कि अंग्रेजी भारत की आमफहम भाषा नहीं है, बहुत थोड़े से लोगों की भाषा है। इस कारण से यह देश के एक छोटे से प्रबुद्ध वर्ग की सम्पर्क-भाषा भले बन जाये, देश की बहुसंख्यक जनता की भाषा नहीं बन सकती। पंजाब का निवासी बंगाल में गंगासागर जाता है या उत्तर प्रदेश का नागरिक दक्षिण में रामेश्वरम जाता है या फिर दक्षिण के आमजन तीर्थयात्रा हेतु बनारस, प्रयाग आदि जगहों पर जाते हैं तो कौन सी भाषा उनके काम आती है? क्या वह भाषा अंग्रेजी होती है? नि:सन्देह वह भाषा हिन्दी ही है, भले उसका रूप-स्वरूप कैसा भी हो । यह जन-से-जन को जोड़ने वाली भाषा ही नहीं मन-से-मन को जोड़ने वाली भाषा है। अंग्रेजी हाथ-से-हाथ मिलवाने भर के काम आ सकती है, जबकि हिन्दी दिल-से-दिल मिलाने के काम आने वाली भाषा है, जैसा कि प्रकाश मनु के साथ साक्षात्कार में जर्मनवासी हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान डॉ. लोठार लुत्से कहते हैं- 'अंग्रेजी दिमाग की जुबान है, हिन्दी दिल की.. एक्शन की।' (आजकल मई, 2015 पृ. 18) महात्मा गाँधी भी ऐसा ही मानते थे। सन् 1917 में कांग्रेस के कलकत्ता (कोलकाता) अधिवेशन में उन्होंने कहा था- 'मैं ऐसा कोई कारण नहीं समझता कि हम अपने देशवासियों के साथ अपनी भाषा में बात न करें। वास्तव में अपने लोगों के दिलों तक तो हम अपनी भाषा के द्वारा ही पहुँच सकते हैं।'

गाँधी जी ने जिस प्रश्न को आज से पूरे सौ साल पहले परतन्त्र भारत में उठाया था आज भी वह प्रश्न जस-का-तस विचारणीय है, अपितु वह पहले से और भी अधिक मौजूद हो गया है। सन् 1916 के काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाले अपने व्याख्यान में ही उन्होंने कहा था- ''किन्तु मान लीजिए हमने पिछले पचास वर्षों में अपनी-अपनी भाषाओं में शिक्षा पायी होती, तो आज हम किस स्थिति में होते? तो आज भारत स्वतन्त्र होता । तब हमारे पढ़े-लिखे लोग अपने ही देश में विदेशियों की तरह अजनबी न होते बल्कि देश के हृदय को छूने वाली वाणी बोलते । वे गरीब-से-गरीब लोगों के बीच काम करते और पचास वर्षों की उनकी उपलब्धि पूरे देश की विरासत होती।''

राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगीत की भांति ही गाँधीजी के लिये राष्ट्रभाषा भी राष्ट्रीय भाव की प्रतीक थी और राष्ट्रीयता के निर्माण का साधन भी। और वे यह खूब अच्छी तरह से महसूस करते थे कि सम्पूर्ण राष्ट्र के निवासियों में एकात्म भाव भरने का जो काम हिन्दी कर सकती है वह काम अंग्रेजी या अन्य कोई विदेशी भाषा नहीं कर सकती । वे यह भी अच्छी तरह जानते थे कि गुलामी से भी बढ़कर होता है गुलामी का भाव । जब तक भारतीयों के भीतर से यह गुलामी का भाव नहीं निकलेगा, तब तक वे पूरी तरह आत्मनिर्भर और स्वाभिमानी नहीं हो सकते। वे भारत के लिये अंग्रेजी को जहर मिला दूधा और हिन्दी को शुद्ध दूध बताते थे । जहर मिला दूध यानि भारतीय भाषाओं को नष्ट करने वाली भाषा तथा शुद्ध दूध यानि उन्हें पुष्ट करने वाली भाषा। 1918 के इन्दौर अधिवेशन में उन्होंने कहा था- ''पहली माता से हमें जो दूध मिल रहा है, उसमें जहर और पानी मिला हुआ है, और दूसरी माता से शुद्ध दूध मिल सकता है। बिना इस शुद्ध दूध के मिले हमारी उन्नति होना असम्भव है। पर जो अन्धा है, वह देख नहीं सकता। गुलाम यह नहीं जानता कि अपनी बेड़ियाँ किस तरह तोड़े । पचास वर्षों से हम अंग्रेजी के मोह में फंसे हैं। हमारी प्रज्ञा अज्ञान में डूब रही है।..''

इसलिये उन्होंने बार-बार और बड़े दृढ़ शब्दों में अंग्रेजी को हटाकर उसके स्थान पर हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने की बात कही। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के 20 अप्रैल सन् 1935 को इन्दौर में हुए 24वें अधिवेशन में उन्होंने कहा था कि ''भाषा पर इतना जोर इसलिये देता हूँ कि राष्ट्रीय एकता प्राप्त करने का यह एक बड़ा जबरदस्त साधन है और जितना दृढ़ इसका आधार होगा, उतनी ही प्रशस्त हमारी एकता होगी।'' इसके लिये उन्होंने जो भाषा उपयुक्त पायी, वह भाषा हिन्दी ही थी। उन्होंने इसी अवसर पर कहा ''हिन्दुस्तान को अगर सचमुच एक राष्ट्र बनाना है, तो चाहे कोई माने या न माने- राष्ट्रभाषा तो हिन्दी ही बन सकती है, क्योंकि जो स्थान हिन्दी को प्राप्त है, वह किसी दूसरी भाषा को नहीं मिल सकता।'' सन् 1918 के इन्दौर अधिवेशन में तो उन्होंने यहाँ तक कह दिया था कि ''हमें ऐसा उद्योग करना चाहिए कि एक वर्ष में राजकीय सभाओं में, कांग्रेस में, प्रान्तीय भाषाओं में, अन्य सभा-समाज और सम्मेलनों में अंग्रेजी का एक भी शब्द सुनाई न पड़े। हम अंग्रेजी का व्यवहार बिल्कुल त्याग दें। अंग्रेजी सर्वव्यापक भाषा है, पर यदि अंग्रेज सर्वव्यापक न रहेंगे तो अंग्रेजी भी सर्वव्यापक न रहेगी। हमें अब अपनी मातृभाषा की और उपेक्षा करके उसकी हत्या नहीं करनी चाहिए। जैसे अंग्रेज अपनी मादरी जबान

अंग्रेजी में ही बोलते और सर्वथा उसे ही व्यवहार में लाते हैं, वैसे ही मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा बनने का गौरव प्रदान करें। हिन्दी सब समझते हैं। इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए।''

महात्मा गाँधी की भाषा-सम्बन्धी एक स्पष्ट नीति थी और उस नीति में हिन्दी, अंग्रेजी सहित सभी भारतीय भाषाओं की अपनी-अपनी जगह विशेष भूमिका थी। उनका मानना था कि ''प्रत्येक प्रान्त में उस प्रान्त की भाषा, सारे देश के पारस्परिक व्यवहार के लिये हिन्दी और अन्तर्राष्ट्रीय उपयोग के लिये अंग्रेजी का व्यवहार हो।'' राष्ट्रभाषा हिदी के साथ-साथ भारत की अन्य राष्ट्रीय भाषाओं को लेकर भी उनकी सोच एकदम साफ थी। राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के प्रतिष्ठित हो जाने का अभिप्राय भारत की अन्य प्रान्तीय भाषाओं का महत्व कमतर हो जाना कतई नहीं था। उनकी दृष्टि में अपने-अपने प्रान्तों में उनका वही महत्व और स्थान था जो राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी का था। एक अवसर पर उन्होंने कहा था कि ''महान प्रान्तीय भाषाओं को उनके स्थान से च्युत करने की कोई बात ही नहीं है क्योंकि राष्ट्रीय भाषा की इमारत प्रान्तीय भाषाओं की नींव पर ही खड़ी की जानी है। दोनों का लक्ष्य एक-दूसरे की जगह लेना नहीं, बल्कि एक-दूसरे की कमी पूरा करना है।''

उनके स्वराज में अंग्रेजी को भी स्थान था, पर उसकी उपयोगिता के मद्देनजर ही। आज के युग में वैश्विक सन्दर्भों में अंग्रेजी के महत्व के प्रति कोई एकदम से आँख नहीं मूंद सकता है। गाँधी जी भी अंग्रेजी की इस उपयोगिता को खूब समझते थे और इस कारण से राष्ट्रीय जीवन में वे उसके महत्व को एकदम नकारते नहीं थे, पर वे उसको राष्ट्रभाषा बनाकर राष्ट्रवासियों के सिर पर अनिवार्यत: थोपे जाने के खिलाफ थे । 2 फरवरी के 'यंग इण्डिया' में उन्होंने लिखा- ''अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की भाषा है, वह सम्बन्धों की, कूटनीति की भाषा है, उसके साहित्य का भण्डार बड़ा ही सम्पन्न है । इसके द्वारा हमें पश्चिमी विचारों और सभ्यता की जानकारी प्राप्त होती है। इसलिये हममें से थोड़े से लोगों के लिये अंग्रेजी का ज्ञान जरूरी है। ये लोग राष्ट्रीय व्यापार और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को चला सकते हैं और देश को पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान और साहित्य एवं विचारों की श्रेष्ठतम उपलब्धियों का ज्ञान करा सकते हैं। यही अंग्रेजी का उचित उपयोग होगा, मगर आज तो उसने हमारे मन-मन्दिर में सबसे ऊँचा स्थान बना रखा है और मातृभाषा को उसके स्थान से च्युत कर दिया है।''

इस तरह भारत में अंग्रेजी के चलन को लेकर गाँधी जी के मन में दो-तीन बातें एकदम साफ थीं। पहली तो यही कि अंग्रेजी की जगह हिन्दी देश की राष्ट्रभाषा बने। दूसरी यह कि कुछ सक्षम लोग अंग्रेजी ही नहीं पढें, दुनिया की और भी महत्वपूर्ण भाषाएँ पढ़ें और उनमें उपलब्ध ज्ञान-विज्ञान को प्राप्त कर अपनी भाषाओं के माध्यम से देश में उसका प्रचार-प्रसार कर देश को उससे लाभान्वित करें। अंग्रेजी की शिक्षा के हिमायती वे विद्यालय स्तर पर नहीं, उच्च शिक्षा के स्तर पर थे। वे यह नहीं चाहते थे कि लोग अंग्रेजी पढ़कर अपनी भाषाओं को भूल जाएँ या उनके प्रति हीन भाव रखें। उनका कहना था- ''युवक-युवतियाँ अंग्रेजी और दुनिया की सारी भाषाएँ खूब पढ़ें, लेकिन उनसे मैं आशा करूँगा कि वे अपने ज्ञान का प्रसार भारत को और सारे संसार को उसी तरह प्रदान करेंगे, जैसे बोस, राय और स्वयं रवीन्द्रनाथ ने प्रदान किया है। मगर मैं हरगिज यह नहीं चाहूँगा कि कोई भी हिन्दुस्तानी अपनी मातृभाषा को भूल जाए या उसकी उपेक्षा करे या उसे देखकर शरमाये अथवा यह महसूस करे कि अपनी मातृभाषा के जरिए वह ऊँचे-से-ऊँचा चिन्तन नहीं कर सकता।''

इस तरह से हम देख सकते हैं कि महात्मा गाँधी हिन्दी के सच्चे हितैषी थे। वे वस्तुत: भारत, भारतीयता और भारतीय जन के हितैषी थे। इन तीनों के हित के लिये आवश्यक था कि भारत की अपनी भाषाओं को प्रतिष्ठा मिले जिनमें भारत सोचे, भारतीयता अपनी पहचान बनाये और भारतीय जन शासन-प्रशासन में अपनी भागीदारी महसूस करे। समग्र भारत में एकात्मता लाने के लिये तथा सभी भारतीय भाषाओं में समन्वय स्थापित करने के लिये एक भारतीय भाषा को राष्ट्र द्वारा राष्ट्रभाषा के रूप में अंगीकार किया जाना परम आवश्यक था। इस हेतु भारत के नेताओं ने हिन्दी को सर्वाधिक उपयुक्त पाकर उसे इस कार्य हेतु चुना था। महात्मा गाँधी ने इस जरूरत को काफी शिद्दत से महसूस किया था और इसीलिये उन्होंने उसके पक्ष में जोरदार आवाज उठायी थी। इसलिये उनका हिन्दी-हित वस्तुत: राष्ट्रभाषा के रूप में राष्ट्रहित से ही जुड़ा था।

-प्रो. हरीश कुमार शर्मा
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, राजीव गाँधी विश्वविद्यालय
रोनो हिल्स, दोइमुख, ईटानगर
अरुणाचल प्रदेश-791112

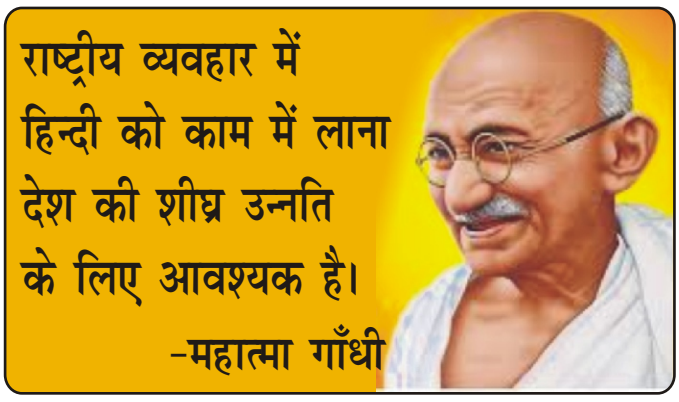

भाषा के संकट का दौर

संजय ठाकुर

न सही वर्तनी, न सही वाक्य-विन्यास, न सही उच्चारण और न ही व्याकरण के नियमों का पालन ! यही है वर्तमान समय में भाषा का स्वरूप। यह किसी भाषा-विशेष की बात नहीं है बल्कि विश्व भर में बोली जाने वाली लगभग प्रत्येक भाषा तथाकथित आधुनिकता की दौड़ में अपना वास्तविक स्वरूप खो-सा चली है। वैसे, प्राचीन समय से मध्यकालीन पड़ाव को पार करते हुए आधुनिक समय में प्रवेश करते-करते भाषा स्वाभाविक रूप से परिवर्तन के दौर से गुजरी है, किन्तु यह परिवर्तन समय के अन्तराल में मानव-जीवन को प्रभावित करने वाले परिवर्तन जैसा ही था। वर्तमान समय की बात करें तो यह भाषा के परिवर्तन से भी बढ़कर भाषा के संकट का दौर है। इस दौर में भाषा का रूप-स्वरूप बिगड़ चुका है। इसके लिए जहाँ लोगों का भाषा की पेचीदगियों से मुँह मोड़ना एक कारण है वहीं भाषा के प्रति उनकी उदासीनता और भाषा के महत्व को न समझ पाना जैसे दूसरे कई कारण हैं। परिणाम स्वरूप वर्तमान समय में भाषा उपहास का विषय बन गई है। सीधे-से शब्दों में कहें तो भाषा अब आचार-व्यवहार की औपचारिकता भर रह गई है।

भाषा के संकट की बात करें तो लगभग प्रत्येक भाषा पर मण्डराते संकट के इस बादल का एक प्रत्यक्ष अवलोकन हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं के सन्दर्भ में किया जा सकता है। वैसे भी, सबसे अधिक इन दो भाषाओं का ही स्वरूप बिगड़ा है। हिन्दी-भाषा पर पड़ा यह प्रभाव सीधे तौर पर भारत देश के उभरे परिदृश्य की मुँह-बोलती तस्वीर है जबकि अंग्रेजी-भाषा पर पड़ा प्रभाव विश्व के पैमाने पर देखा जा सकता है।

हिन्दी-भाषा का बिगड़ता स्वरूप और इसका लगातार संकट में पड़ता जा रहा अस्तित्व वास्तव में राजभाषा का गौरव-प्राप्त भारत की सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली एक समृद्ध भाषा के अस्तित्व का भी प्रश्न है। यह सीधे रूप में देश की अस्मिता, गरिमा और इसके मूल्यों से जुड़ी समस्या है। हाँ, इतना जरूर है कि इसका जीवन के नैतिक मूल्यों से प्रत्यक्ष रूप से कोई सरोकार नहीं, किन्तु इतना जरूर है कि जीवन-मूल्यों से इसका सीधा-सीधा सम्बन्ध होने के कारण नैतिक मूल्यों से इसके परोक्ष सम्बन्ध को नकारा नहीं जा सकता । जीवन के नैतिक मूल्यों से बढ़ती दूरियाँ ही गरिमा और मर्यादा जैसे उच्च मूल्यों को भुला देने की परम्परा-सी स्थापित कर देती हैं । ऐसे में फिर किसी भी आदर्श-स्वरूप का अपने अर्थ खो देना कोई बड़ी बात नहीं रह जाती। बिल्कुल ऐसा ही भाषा के साथ भी हुआ है।

स्वतन्त्रता के सत्तर से अधिक वर्ष बीत जाने के बाद भी हिन्दी कभी अपना वह स्थान नहीं बना पाई जो एक राजभाषा और देश की सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली एक समृद्ध भाषा का होना चाहिए। यहाँ सबसे अधिक चिन्ताजनक बात तो यह है कि हिन्दी का स्वरूप लगातार बिगड़ता जा रहा है और इसके बिगड़ते चले जाने की यह गति बहुत तीव्र है। इस प्रकार देखें तो यह दौर किसी भाषा-विशेष का नहीं रह गया है बल्कि यह तो एक मिश्रित और जीर्ण-शीर्ण भाषा (मिक्स्ड एण्ड डिलैपिडेटिड लैंग्वेज) का दौर है। किसी भी उपन्यास, कहानी, नाटक जैसी साहित्यिक कृतियों और टेलिविजन के धारावाहिकों में भाषा की यह टूटन समझ में आती है क्योंकि इनमें विभिन्न पात्रों के व्यक्तित्व को प्रतिबिम्बित करना होता है, किन्तु टेलिविजन के किसी समाचार-वाचक या किसी कार्यक्रम-विशेष के संचालक द्वारा भाषा का अशुद्ध प्रयोग या फिर किसी पत्र-विशेष; जिसमें न तो किसी पात्र के व्यक्तित्व को प्रतिबिम्बित करने के लिए सीमित शब्दों या भाषा-प्रकार की बाध्यता है और न ही सही भाषा के प्रयोग न कर पाने की अन्य विवशता, वास्तव में भाषा का संकट ही कहा जाएगा। दूसरे शब्दों में इसे भाषा-आकिंचन्य या भाषा की कंगाली का नाम भी दे सकते हैं। सबसे अधिक दु:खद बात तो यह है कि वर्तमान समय में अधिकतर लोग भाषा से कंगाल हैं। इनमें एक बड़ी संख्या उनकी है जो स्वयं को कलम का पुरोधा समझते हैं या जिन्हें कलम के पुरोधा होने का 'गौरव' प्राप्त है।

भाषा का मिश्रण कोई अनुचित बात नहीं है, किन्तु विभिन्न भाषाओं के शब्दों का उपयुक्त मिश्रण किया जाना बहुत ही आवश्यक है। हिन्दी-उर्दू का मिश्रण एक हद तक सही है क्योंकि इससे एक अन्य भाषा 'हिन्दुस्तानी' का निर्माण होता है, किन्तु 'हिन्दी' या 'हिन्दुस्तानी' में अंग्रेजी के शब्दों का अनावश्यक प्रयोग भौण्डापन ही प्रतीत होता है। वाक्य 'मैं किसी का वेट कर रहा हूँ' कुछ हद तक ठीक लगता है, किन्तु 'मैंने उसको आस्क किया' न ही तो सही है और न ही यह व्यवहारिकता के किसी भी दृष्टिकोण से सही ठहराया जा सकता है।इसी प्रकार वाक्य 'मैं अपने डिफेन्स में कुछ कहना चाहता हूँ' कुछ या काफी हद तक ठीक है और यह सामान्यतया ग्राह्य भी है क्योंकि इसमें एक सहजता है। अंग्रेजी-भाषा के कुछ शब्दों के हिन्दी-भाषा में मिल जाने से सहजता पा लेने का यह अर्थ बिल्कुल नहीं है कि अंग्रेजी-भाषा के शब्दों का हिन्दी-भाषा में वह प्रयोग उचित है या उसकी स्वीकृति है। यह भाषा

का शाब्दिक स्थानापन्न तो माना जा सकता है, किन्तु यह भाषा की आवश्यकता कतई नहीं है। इससे तो भाषा संकट में ही पड़ती है। ऐसे शब्द-प्रयोग से भाषा अपना वास्तविक स्वरूप खो देती है और इस प्रकार के बढ़ते शब्द-प्रयोग का सीधा-सीधा प्रभाव भाषा के अस्तित्व पर पड़ता है। किसी दूसरी भाषा से शब्द उधार लेना भाषा की कमजोरी नहीं बल्कि भाषा को प्रयोग में लाने वाले की विवशता या शाब्दिक ज्ञान अभाव है।

टेलीविजन के हिन्दी-धारावाहिकों में सामान्य बातचीत की भाषा की दशा यह है कि अर्थ का अनर्थ होने वाली स्थिति पैदा हो जाती है। उदाहरण-स्वरूप एक बड़े हिन्दी-धारावाहिक में किसी पात्र के सम्वाद थे "यह असम्भव ही नहीं बल्कि नामुमकिन भी है"। यहाँ इस वाक्यांश में लेखक ने 'असम्भव' और 'नामुमकिन' शब्दों को दो अलग-अलग अर्थों में प्रयुक्त किया जबकि इन दोनों शब्दों का एक ही अर्थ है। अन्तर केवल इतना है कि 'असम्भव' हिन्दी-भाषा का शब्द है और 'नामुमकिन' फारसी, अरबी और उर्दू भाषा का । ऐसी हास्यास्पद स्थिति इसी प्रकार कई हिन्दी-धारावाहिकों में कई स्थानों पर देखने को मिलती है।

हिन्दी-वर्णमाला के अनुसार तो हिन्दी-वर्तनी का त्रुटिपूर्ण प्रयोग किया ही जा रहा है, साथ ही हिन्दी-भाषा के शब्दों की दोषपूर्ण वर्तनी हिन्दी-भाषा को अंग्रेजी-वर्णों में लिखने में भी दृष्टिगोचर होती है। उदाहरण के रूप में एक बड़े हिन्दी-धारावाहिक के शीर्षक में 'जिन्दगी' शब्द को 'जैड आई एन डी ए जी आई आई' और 'की' शब्द को 'के ए वाई' लिखा गया । 'जिन्दगी' शब्द में अन्त में वर्ण 'आई' का दो बार प्रयोग बिल्कुल गलत है। अंग्रेजी-भाषा का वर्ण 'आई' एक-साथ दो बार प्रयुक्त किए जाने पर कभी भी हिन्दी-भाषा के वर्ण 'ई' की ध्वनि उत्पन्न नहीं करता। ऐसा अंग्रेजी-भाषा के वर्तनी-प्रयोग की प्रणाली के आधार पर कहा जा सकता है। अंग्रेजी-भाषा में एक 'आई' वर्ण या एक-साथ प्रयुक्त दो 'ई' वर्ण निश्चित रूप से हिन्दी-भाषा के 'ई' वर्ण की ध्वनि देते हैं। शब्द 'की' को 'के ए वाई' लिखना किसी भी दृष्टि से ठीक नहीं है। अंग्रेजी-भाषा के वर्ण 'ए वाई' एक-साथ लिखे जाने पर हिन्दी-भाषा के 'ए' या 'ऐ' जैसे वर्णों की ध्वनि देते हैं, किन्तु इनसे हिन्दी-भाषा के 'ई' वर्ण की ध्वनि कदापि उत्पन्न नहीं होती । इसी प्रकार एक और हिन्दी-धारावाहिक के शीर्षक में 'कुसुम' की वर्तनी अंग्रेजी-वर्णों में 'के के यू एस यू एम' लिखी गई, जो किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। इससे भी हटकर हिन्दी-भाषा के उच्चारण की बात करें तो हिन्दी के नाम पर जो भाषा सुनने में आती है वह हिन्दी कम ही प्रतीत होती है। शब्दों को स्पष्ट रूप से उच्चरित न कर पाने की त्रुटि को छोड़कर यहाँ भाषा के उस स्वरूप की बात की जा रही है जो हिन्दी के नाम पर अंग्रेजी का चोगा पहने सामने आता है। इस तरह के भाषा-प्रयोग में पश्चिमी देशों का प्रभाव तो देखा ही जा सकता है साथ ही यह लोगों की कलुषित मानसिकता का भी परिचायक है।

भाषा का यह संकट बहु-आयामी है। आज जहाँ एक ओर भाषा की वर्तनी प्रभावित हुई है वहीं दूसरी ओर वाक्य-विन्यास की स्थिति भी बिगड़ी है। व्याकरण की बारीकियों और सही उच्चारण की ओर तो लेशमात्र भी ध्यान नहीं दिया जाता, भाषा के सामान्य ज्ञान का भी नितान्त अभाव दृष्टिगोचर होता है। यहाँ तक कि देश के अग्रणी समाचार-पत्रों के मुख पृष्ठ पर भी ढेर सारी त्रुटियाँ देखने को मिलती हैं। यह बात और भी दु:खद हो जाती है कि भाषा के उचित प्रयोग में चूक करने वाले अधिकतर इसके तथाकथित कर्णधार ही हैं। यह एक विडम्बना ही है कि हिन्दी-साहित्य में शोध की उपाधि-प्राप्त अधिकतर प्राध्यापकों और छात्रों को भी न तो हिन्दी-भाषा का अच्छा ज्ञान ही होता है और न ही वो हिन्दी-भाषा में बात करना ही पसन्द करते हैं।

कुछ भी हो, कुल मिलाकर भाषा के अस्तित्व का ही प्रश्न उठता है। प्रश्न यह है कि भाषा का वास्तविक स्वरूप क्या रहेगा ? भाषा के तीव्रता से परिवर्तित होते स्वरूप को देखते हुए इस प्रश्न का उत्तर खटाई में पड़ा प्रतीत होता है। यह निश्चित रूप से भाषा का संकट है। इस संकट से पार पाने के लिए भाषा के उत्थान की दिशा में प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। यह किसी एक का दायित्व नहीं है बल्कि इसमें सामूहिक प्रयास अपेक्षित हैं। इस दिशा में उन लोगों को विशेष ध्यान देना चाहिए जो सीधे रूप में भाषा से सम्बद्ध हैं। साथ ही वर्तमान समय में साहित्यकारों को भी चाहिए कि वो भाषा के शिल्प की ओर विशेष ध्यान दें। उन्हें यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि साहित्यिक रचनाओं से ही भाषा को व्यापकता मिलती है। इस तरह के प्रयासों से भाषा-प्रवाह को बरकरार रखा जा सकता है अन्यथा यह प्रवाह एक दिन यूँ ही थमकर एक सूखी नदी का रूप ले लेगा ।

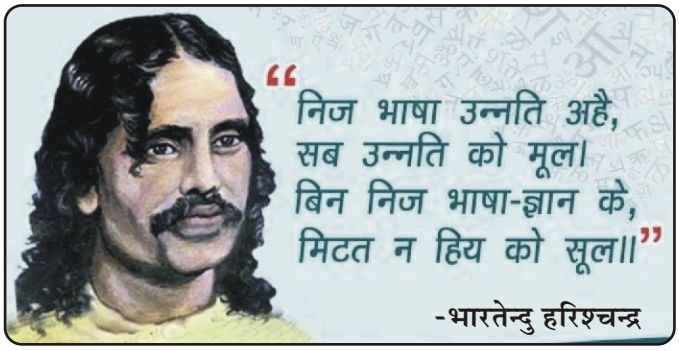

भाषा-गत-अनागत

(साक्षात्कार संग्रह)

विजय कुमार शर्मा

'भाषा-गत-अनागत' पुस्तक 'हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी' द्वारा विभिन्न सरकारी पदों पर बैठे हुए उच्चाधिकारियों, विद्वानों, भाषाविदों, शिक्षाविदों, वरिष्ठ पत्रकारों, प्रतिष्ठित एवं ख्यात साहित्यकारों का लिया गया साक्षात्कारों का संग्रह है । भाषा को लेकर किए गए साक्षात्कारों को इस तरह संग्रहित करने का यह शायद प्रथम प्रयोग हो सकता है । संग्रह में सम्मिलित साक्षात्कारों को 'हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी' की त्रैमासिक पत्रिका 'हिन्दुस्तानी भाषा भारती' के विभिन्न अंकों में प्रकाशित किया जा चुका है। अलग-अलग अंकों में प्रकाशित इन साक्षत्कारों को संशोधित कर, एक ही जगह संग्रहित करके पुस्तक रूप में लाने का मुख्य उद्देश्य भारतीय भाषाओं में शोध करने वाले शोधार्थियों एवं भाषाओं के लिए विशेष अध्ययन करने वाले संस्थाओं को समकालीन भाषा चिंतक एवं विचारकों के व्यक्तिगत अनुभव, भाषा के इतिहास, भाषा की वर्तमान स्थिति एवं भविष्य की भाषा आदि से संबंधित सभी जानकारियाँ एक ही जगह उपलब्ध कराना है । इस संग्रह में 30 ऐसे लब्ध साहित्यकारों, भाषा सेवियों, भारतीय भाषाओं के पक्षधर विद्वानों, मित्र देशों के राजनयिकों, वरिष्ठ पत्रकारों, नौकरशाहों के साक्षात्कारों को सम्मिलित किया गया है जो विभिन्न प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से जुड़े हैं, विभिन्न विश्वविद्यालयों के कुलपति रहें हैं, भारतीय प्रशासनिक सेवा अधिकारी हैं, भारत में विभिन्न देशों के राजदूत हैं, प्रतिष्ठित अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं में कार्यानुभव प्राप्त युवाओं के प्रेरक व्यक्तित्व हैं, साथ ही सरकारी उच्च पदों पर आसीन वरिष्ठ अधिकारी हैं । साक्षात्कार के क्रम में हमने उनसे वैश्विक परिदृश्य में हिन्दी भाषा की स्थिति, देश की शिक्षा नीति, भविष्य की हिन्दी, देवनागरी लिपि के संरक्षण, त्रिभाषा सूत्र के प्रावधान और उसके लक्ष्य, भारत में मातृभाषा शिक्षा, हिंगलिश और रोमन लिपि से भारतीय भाषाओं को संकट, आठवीं अनुसूची और इसके पीछे की राजनीति, शिक्षा का माध्यम और राष्ट्रभाषा की मांग, विश्व हिन्दी सम्मेलन एवं उनकी जमीनी सच्चाई, मीडिया एवं पत्रकारिता की भाषा, भारत की विलुप्त होती भाषाएँ और उनके संरक्षण में किए गए प्रयास आदि से संबंधित विषयों पर इनके व्यक्तिगत अनुभव एवं विचार, सरकारी नीतियों एवं उनकी कार्यप्रणाली आदि की जानकारियों के आधार पर इन गंभीर प्रश्नों के पीछे के सच को आम जनसमुदाय तक पहुँचाना ही इस पुस्तक का उद्देश्य है । प्रत्येक भाषा का अपना एक स्वरूप होता है, उसका व्याकरण होता है, मानक प्रणाली एवं अपना समृद्ध इतिहास होता है। भाषा का गत रूप इस बात का विश्लेषण करता है कि अपने विभिन्न काल खण्डों में उस भाषा का स्वरूप, उसकी लिपि, उसका विकास क्रम, उस भाषा के प्रयोक्ताओं के भाषा व्यवहार की क्या स्थिति थी। इसी तरह भाषा का अनागत रूप भविष्य में सम्बन्धित भाषा पर पड़ने वाले प्रभावों को दर्शाता है। यह प्रभाव उस भाषा पर आने वाले संकट, उसकी लिपि में परिवर्तन, उसका शब्द भण्डार, वाक्य रचना, अन्य भाषाओं का प्रभाव, प्रयोक्ताओं का मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक धारणाएँ, भौगोलिक प्रभुत्व, देश की शिक्षा नीति एवं भाषा नीति आदि परिवर्तनों की विवेचना करता है। पुस्तक पर संग्रहित साक्षात्कार विशेषकर हिन्दी भाषा और भारतीय भाषाओं की स्थित पर केन्द्रित हैं। इन साक्षात्कारों का अध्ययन करते हुए यह सार निकला कि यह हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के विगत और आगत संभावनाओं पर स्पष्ट दृष्टिकोण रखते हैं, अत: इस पुस्तक का नाम भाषा-गत-अनागत रखा गया।

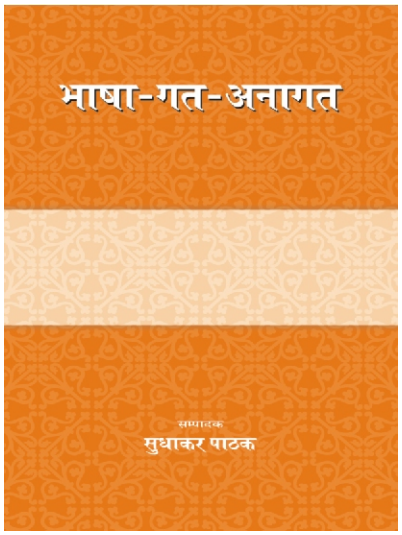

'हिन्दुस्तानी भाषा भारती' पत्रिका अपने निर्बाध प्रकाशन के तीन वर्ष पूरे कर चौथे वर्ष में प्रवेश कर चुकी है। इन बीते तीन वर्षों के भीतर अकादमी ने विभिन्न प्रतिष्ठित सरकारी संस्थानों में आसन्न उच्चाधिकारियों, विभिन्न विश्वविद्यालयों के कुलपतियों, प्रशासनिक अधिकारियों, शिक्षाविदों, भाषाविदों, वरिष्ठ पत्रकारों, ख्यात साहित्यकारों एवं विद्वत लेखकों से संपर्क किया और भाषा के संबंध में उनके विचारों एवं दृष्टिकोण को जाना और समझा। यह वे महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व हैं जिन तक पहुँच पाना सबके लिए संभव नहीं है; इनसे संवाद करना और इनके साक्षात्कारों को प्रकाशित करना कम मुश्किल काम नहीं था, लेकिन भाषा के प्रति अकादमी की प्रतिबद्धता ने इस दुरूह कार्य को पूर्ण जिम्मेदारी के साथ पूरा कराया । देश की भाषा-नीति क्या हो? शिक्षा-नीति में क्या बदलाव हो? शिक्षा का माध्यम, राष्ट्रभाषा का प्रश्न, आठवीं अनुसूची, त्रिभाषा सूत्र, विद्यालय स्तर की शिक्षा में भारतीय भाषाओं और विदेशी भाषाओं की स्थिति, देश में अंग्रेजी की धमक सहित कई ऐसे गंभीर प्रश्न हैं जो हमें प्राय: उद्वेलित करते रहते हैं । हमने इन कुछ ज्वलंत प्रश्नों के उत्तर तलाशने के क्रम में समाज के जिम्मेदार वरिष्ठजनों की राय को साक्षात्कार के रूप में लाने की कोशिश की है, जिसे यहाँ पुस्तक रूप में लाया गया है । हम नहीं कह सकते कि इन सभी जटिल प्रश्नों के सही उत्तर आपको इस पुस्तक में मिल पाएंगे या नहीं, लेकिन इतना विश्वास है कि कुछ धुंध अवश्य छाँटेगी और आप अनुमान लगा पायेंगे कि आजादी के 70 वर्षों बाद भी आज तक यह मुद्दे जीवित क्यों हैं ?

आशा है कि श्री राजकुमार श्रेष्ठ और श्री सागर समीप के सहयोग से अकादमी के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक द्वारा सम्पादित यह पुस्तक शोधार्थियों के लिए लाभप्रद होगी तथा भारतीय भाषा साहित्य जगत में इस गंभीर प्रयास को सराहा जाएगा ।

अकादमी के आगामी प्रकाशन

'हिन्दी : विमर्श के विविध आयाम'

(हिन्दी पर केन्द्रित लेख संग्रह)

सुषमा भण्डारी

'हिन्दी: विमर्श के विविध आयाम' पुस्तक हिन्दी भाषा को विविध क्षेत्रों के माध्यम से देखने का सपाट दृष्टिकोण है। किसी भी भाषा पर जब विमर्श किया जाता है तो उसके प्रभाव क्षेत्र, उस भाषा से सम्बन्धित संस्थान, उस भाषा को बोलने वाले समुदाय के लोक जीवन, लोक साहित्य, संस्कृति, शिक्षा, उद्यम, व्यवसाय, उस भाषा का व्याकरण, लिपि, उप भाषाएँ, बोलियाँ आदि पर भी विवेचन करना आवश्यक हो जाता है । प्रत्येक भाषा की अपनी रचना प्रक्रिया होती है। प्रत्येक भाषा का जीवित इतिहास, शिष्ट परंपरा, जन प्रयोग का व्यवहारिक पक्ष, सांस्कृतिक शिष्टाचार, अभिजात साहित्य का विपुल भण्डार आदि कारक तत्वों का विश्लेषण करना उस भाषा के समग्र अध्ययन को सुस्पष्ट करता है। भाषा कोई भी हो, उसके प्रभुत्व क्षेत्र में उसका सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षणिक, वैचारिक एवं व्यापक सामयिक दृष्टिकोण होता है। हमारे संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार हिन्दी को भारत की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है। देश के ग्यारह राज्यों ने हिन्दी को राजभाषा के रूप में मान्यता दी है । यह भारत की लगभग 44 प्रतिशत जनसंख्या की मातृभाषा तथा सम्पूर्ण भारत की संपर्क भाषा भी है। हिन्दी भारत की 123 आधिकारिक भाषाओं में से अधिकांश भौगोलिक क्षेत्रों में सबसे ज्यादा बोली और समझी जाने वाली भाषा है। भारत की राजभाषा होते हुए भी यह एक अघोषित राष्ट्रभाषा है। संविधान में वर्णित हिन्दी राष्ट्रीय महत्व का विषय है। राष्ट्रीय महत्व के विषय पर जन साधारण का कौतुहल होना स्वाभाविक गुण है। भाषाशास्त्र की दृष्टि से दुनिया की समृद्धतम भाषाओं में से एक, लगभग एक हजार साल का इतिहास समेटे जिस भाषा में लगभग 150 देशों में हिन्दी में शिक्षण-प्रशिक्षण हो रहा हो, लगभग 176 विदेशी विश्वविद्यालयों में जिसमें पठन-पाठन हो रहा हो, जिसमें विश्वभाषा बनने का सामर्थ्य हो, जो संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनने की प्रक्रिया में हो, उसे अपने ही देश में लगातार षड्यंत्रों का शिकार होना पड़ रहा है, यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है। हिन्दी, अंग्रेजी का स्थान न ले ले, इसके पीछे अनेक तत्व काम कर रहे हैं । हिन्दी के कद को छोटा करने के लिए उसकी बोलियों और उपभाषाओं को आठवीं अनुसूची में शामिल कराए जाने की कुटिल चाल चली जा रही है जिससे हिन्दी बड़े क्षेत्र की भाषा होने का दावा न कर सके । आज देश में अंग्रेजी के वर्चस्व एवं रोजगार से जुड़े होने के कारण अंग्रेजी को पहली कक्षा से अनिवार्य बनाया जा रहा है जिससे छात्र हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं से दूर होते जा रहे हैं । इसके साथ ही हिन्दी को रोमन में लिखने का प्रचलन लगातार बढ़ता जा रहा है । हिंगलिश नाम की एक नई कृत्रिम भाषा जन्म ले रही है, जो हिन्दी के स्वरुप को बिगाड़ रही है ।

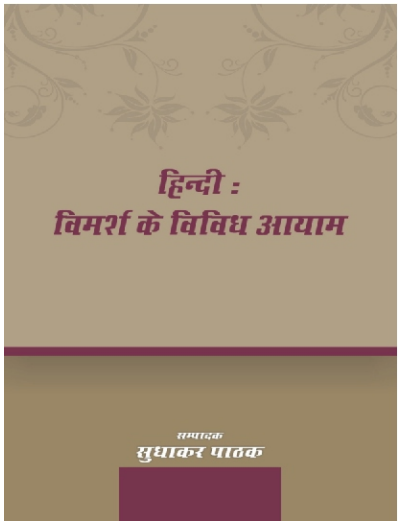

भाषा अनेकों घटनाओं, साक्ष्यों और संभावनाओं को जन्म देती है। भाषा जैसे गंभीर और संवेदनशील अंग के अध्ययन के लिए प्रचुर विमर्श होना जरूरी है। यह पुस्तक हिन्दी के इतिहास, विभिन्न कालखंडों में उसकी स्थिति, वर्तमान परिदृश्य, उसका भविष्य, उसकी चिंताएँ, संभावनाएँ, दूरगामी परिणाम, उस पर मँडराते संकट, उसके पक्ष और विपक्ष में हो रहे विभिन्न प्रदर्शनों एवं उससे होने वाली तात्कालिक और भविष्य में होने वाली संभावित घटनाओं-दुर्घटनाओं, हिन्दी की सहोदरी भाषाओं की वस्तुस्थिति, लुप्त होती भाषाओं की स्थिति, हिन्दी का वैश्विक पटल, तकनीकी विकास, रोजगार के क्षेत्र में उसकी उपस्थिति आदि व्याख्यानों को प्रस्तुत करती है। पुस्तक में हिन्दी के विविध क्षेत्रों को विस्तार से उजागर किया गया है, चाहे वो आठवीं अनुसूची हो, त्रिभाषा सूत्र हो, नई शिक्षा नीति हो, प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा में शिक्षा का माध्यम हो । मातृभाषा में शिक्षा की माँग, हिन्दी की राष्ट्रीय स्वीकार्यता, युवाओं में पनपती हिन्दी के प्रति वितृष्णा, हिंगलिश और हिन्दी का भविष्य, भविष्य की हिन्दी, रोमन लिपि से हिन्दी को चुनौती, हिन्दी में रोजगार के अवसर और भविष्य की चिन्ता, तकनीकी और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हिन्दी की स्थिति, हिन्दी पत्रकारिता और मीडिया विमर्श, भूमंडलीकरण और भाषाई साम्राज्यवाद, लिखित साहित्य एवं पाठकों की अभिरुचि, हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के अभियान, संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने के प्रयास आदि के माध्यम से हिन्दी की स्थिति पर विस्तार से विश्लेषण किया गया है। इस पुस्तक में वरिष्ठ लेखकों, पत्रकारों, साहित्यकारों, मीडियाकर्मियों, शिक्षाविदों एवं भाषाविदों के लेखों को संग्रहित किया गया है। पुस्तक में संग्रहित लेख अकादमी द्वारा प्रकाशित होने वाली त्रैमासिक पत्रिका 'हिन्दुस्तानी भाषा भारती' के विभिन्न अंकों से लिए गए हैं। इन लेखों को विभिन्न माध्यमों से बड़ी मेहनत से मँगाकर पत्रिका के विभिन्न अंकों में प्रकाशित किया गया है। एक भाषा सेवी संस्था होने की जिम्मेदारी बोध के कारण अकादमी ने इन महत्वपूर्ण लेखों को एक ही जगह संग्रहित कर पुस्तक रूप में लाने की योजना पर काम किया जिसका उद्देश्य हिन्दी भाषा पर शोध करने वाले शोधार्थी, हिन्दी भाषा के संरक्षण और प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में कार्य करने वाली संस्थाओं, हिन्दी भाषा पर विशेष अध्ययन करने वाले पत्रकारों, मीडियाकर्मियों, राजनीतिज्ञों आदि के लिए एक स्तरीय शोध पुस्तक तैयार हो सके। एक तरह से यह पुस्तक इन बिखरे हुए लेखों को एक ही सूत में गूँथने का उद्यम है ।

साधारणतया पाठकों की अभिलाषा होती है कि संबंधित विषय की सभी जानकारी एक ही पुस्तक में उपलब्ध हो। हिन्दी भाषा का क्षेत्र व्यापक है अत: भाषा में रुचि रखने वाले पाठकों को सुविधा हो, इस उद्देश्य के साथ हिन्दी भाषा के विविध पक्षों को एक ही पुस्तक में संग्रहित किया गया है। हम आशा करते हैं कि इस महत्त्वपूर्ण संदर्भ पुस्तक से हिन्दी भाषा के शोधार्थी एवं सुधि पाठक वर्ग अवश्य लाभान्वित होंगे।

अकादमी के आगामी प्रकाशन

भारतीय भाषाएँ : चिन्ता से चिन्तन तक

(भारतीय भाषाओं पर केन्द्रित लेखों का संग्रह)

सोनिया अरोड़ा

भाषा किसी व्यक्ति, समाज, संस्कृति या राष्ट्र की पहचान होती है । वास्तव में भाषा एक संस्कृति है, उसके भीतर भावनाएँ, विचार और सदियों की जीवन पद्धति समाहित होती है । भाषा ही परम्पराओं और संस्कृति से जोड़े रखने की एक मात्र कड़ी है । मानव समाज के साथ ही भाषा का भी बराबर विकास होता आया है। इसी विकास के कारण भाषाओं में सदा परिवर्तन होता रहता है। सामान्यत: भाषा वैचारिक अभिव्यक्ति और वैचारिक आदान-प्रदान का सर्वाधिक विश्वसनीय माध्यम है । यही नहीं, यह हमारे समाज के निर्माण, विकास, अस्मिता, सामाजिक व सांस्कृतिक पहचान का भी महत्वपूर्ण साधन है। भाषा के बिना मनुष्य अपूर्ण है और अपने इतिहास और परंपरा से विछिन्न है। जिस भाषा और संस्कार में बच्चा पला-बढ़ा होता है उसके प्रति उसकी अगाध श्रद्धा, प्रेम, सहानुभूति, आत्मानुभूति एवं लगाव का होना स्वाभाविक है। वही बच्चा बड़ा होकर अपने बच्चों में उसी भाषा के संस्कार गढ़ने का काम करता है । इस तरह भाषा और संस्कृति पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होती रहती है।

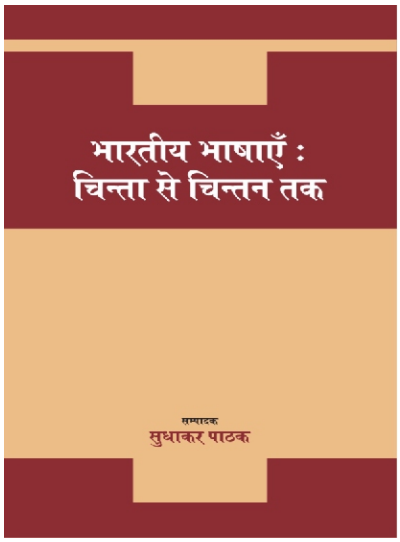

भारत के सन्दर्भ में बात करें तो भारत एक बहु-भाषी, बहु-सांस्कृतिक, बहु-जातीय एवं बहु-धार्मिक सम्प्रदायों का अनुपम देश है। अत: भाषा के विलुप्त होने का खतरा भारतीय भाषाओं पर कहीं अधिक है। कई भारतीय भाषाएँ केवल मौखिक परंपरा पर ही निर्भर है तो कई भाषाओं पर लेखन प्रणाली का अभाव है। यूनेस्को की रिपोर्ट के अनुसार भारतीय भाषाएँ संकटग्रस्त भाषाओं की सूची में पहले स्थान पर हैं । राष्ट्रीय जनगणना 1961 से लेकर 2011 तक के इन बीते 50 वर्षों में लगभग 300 से अधिक भारतीय भाषाएँ अब अपने अस्तित्व में नहीं हैं। लगभग 200 भाषाओं पर अब भी विलुप्त होने का खतरा है। राष्ट्रीय जनगणना 2011 के अनुसार भारत की 123 आधिकारिक भाषाएँ हैं । इनमें से 22 भाषाओं को संवैधानिक मान्यता प्राप्त हैं । संविधान की इस आठवीं अनुसूची में सम्मिलित होने के लिए 40 से अधिक भाषाएँ पंक्ति में हैं, जो लम्बे समय से अपने स्वतंत्र अस्तित्व की मांग कर रहीं हैं। इनमें अधिकतर हिन्दी पट्टी की वे आँचलिक भाषाएँ हैं जिनके दम पर हिन्दी अपनी संख्याबल का दम्भ रखती हैं, भारत की राष्ट्रभाषा होने का हक रखती है तथा संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा होने का मानक पूरा करती है। एक समय विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में हिन्दी का स्थान प्रथम श्रेणी में चिन्हित किया गया था किन्तु 2003 में मैथिली, संथाली एवं डोगरी को आठवीं अनुसूची में सम्मिलित करने से हिन्दी की संख्या बल कम हो गया और इसे अब सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं की द्वितीय/तृतीय श्रेणी में रखा गया है। हिन्दी भाषा के समर्थकों का मानना है कि इस तरह से हिन्दी पट्टी की आँचलिक भाषाओं को अनुसूची में सम्मिलित करने लगे तो वो समय भी दूर नहीं जब हिन्दी के क्षेत्र को संकुचित कर उसकी राजभाषा होने का हक भी छीन लिया जायेगा । कुछ हिन्दी के पक्षधर एवं प्रबल समर्थक इसे हिन्दी की बाहुल्यता को कमजोर करने का षड्यंत्र भी मानते हैं। सत्यता चाहे कुछ भी हों किन्तु इसके दुष्परिणाम और कड़वे अनुभव भाषा की संवेदनशीलता पर प्रश्न तो उठाते ही हैं। जिस तरह से भाषाओं पर क्षेत्रवाद, गुटवाद, ध्रुवीकरण, अस्तित्ववाद और राजनीति हावी हो रही है यह हिन्दी की राष्ट्रीय स्वीकार्यता के पथ पर किसी भी मायने में शुभ संकेत नहीं हैं। इसमें एक बात गौर करने वाली है कि अगर आठवीं अनुसूची में सम्मिलित होना ही किसी भाषा के संरक्षण की गारंटी होती तो सूचीबद्ध 22 भाषाओं में सम्मिलित देव भाषा कही जाने वाली प्राचीनतम संस्कृत भाषा को 2011 की जनगणना में केवल 24,821 लोगों ने अपनी मातृभाषा न बताया होता। इसे बोलने वाले लोगों की संख्या बोडो, मणिपुरी, कोंकणी और डोगरी भाषा बोलने वाले लोगों से भी कम है।

'भारतीय भाषाएँ: चिन्ता से चिंतन तक' पुस्तक का उद्देश्य सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य, लोक कला, संस्कृति को आमजन तक पहुँचाना तो है ही, साथ ही इन भाषाओं की वर्तमान में वास्तविक स्थिति, उनके समक्ष खड़ी चुनौतियों और समस्याओं को उजागर करना भी है । इस पुस्तक में संग्रहित लेखों को अकादमी की त्रैमासिक पत्रिका 'हिन्दुस्तानी भाषा भारती' के विभिन्न भाषाओं के विशेषांकों में से लिया गया है, जिन्हें पत्रिका के अंकों में स्थायी स्तम्भ 'लोकभाषाओं का चमत्कार' में सम्मिलित किया जाता है। पुस्तक में विभिन्न वरिष्ठ साहित्यकारों, भाषाविदों एवं विद्वान लेखकों के आठवीं अनुसूची में सम्मिलित भाषाओं के साथ-साथ अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के शोध परक लेखों को संग्रहित किया गया हैं। भाषाओं पर शोध करने वाले शोधार्थियों, भाषाओं की चिंता करने वाले पाठकों तथा भाषाओं के लिए कार्यशील विभिन्न संस्थाओं के लिए एक संदर्भ ग्रंथ तैयार करना ही इस पुस्तक के प्रकाशन का मूल उद्देश्य है । इस तरह आठवीं अनुसूची में सम्मिलित भाषाओं के साथ-साथ सूची में सम्मिलित होने के लिए कतार में खड़ी क्षेत्रीय भाषाओं के लेखों को पुस्तक रूप में लाने का यह शायद प्रथम प्रयोग हो सकता है। आशा करते हैं कि पाठक एवं शोधार्थी वर्ग इस पुस्तक से लाभान्वित होंगे और इसका स्वागत करेंगे, साथ ही राष्ट्र, संस्कृति और अपनी अस्मिता के लिए कटिबद्ध महानुभावों से करबद्ध निवेदन भी है कि वे आपसी मतभेदों को दरकिनार कर अपनी भाषाओं को बचाने के लिए जी जान से ठोस, सार्थक और सफल प्रयास करें ।

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

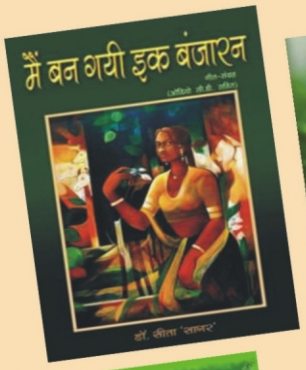

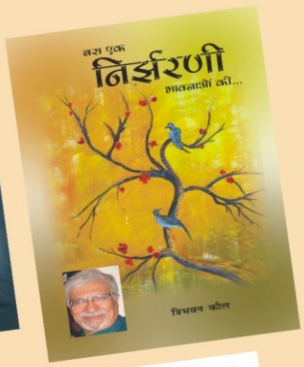

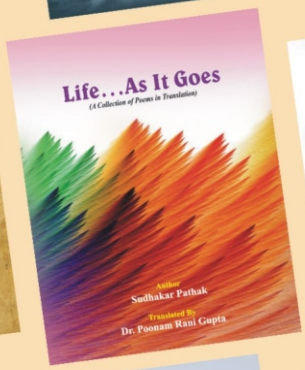

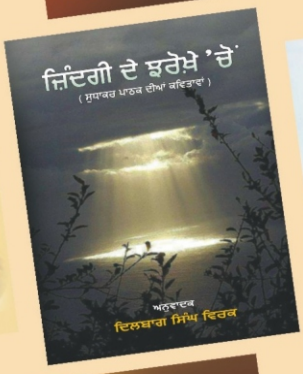

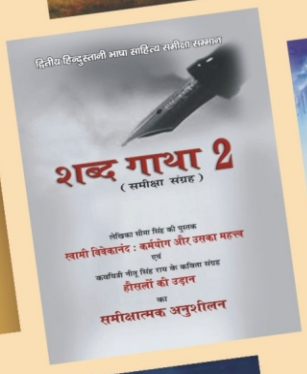

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के आगामी प्रकाशन

B.K. SETHI
+91-9654274072
+91-8745920612

NationsBook .in

Online Book Store

www.nationsbook.in info.nationsbook@gmail.com https://nationsbook.blogspot.com

अब आप www.nationsbook.in पर कम्प्यूटर या लैपटॉप से
ऑनलाइन पुस्तकों का ऑर्डर करें और घर बैठे पुस्तकों को प्राप्त करें ।

Categories are available

* Spritual * Hindi Literature * Poems * Ghazals * Novels
* Science and Technicals * Text Books * English Literature * Art Books
* English Books * Exams Entrance Books * Computers Books * Media Books Etc.

Office : 7/253, Ground Floor, Sant Nirankari Colony, Delhi-110009

RNI No. : DELHIN/2017/73904

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी

(भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार और संवर्धन को समर्पित संस्था)

पंजीकृत कार्यालय : 3675, राजा पार्क, रानी बाग, दिल्ली-110034

दूरभाष : 09873556781, 09968097816

E-mail : info@hindustanibhashaakadami.com
hindustanibhashabharati@gmail.com
Website : www.hindustanibhashaakadami.com